※ पुस्तक

अन्तर के पट खोल
(प्रवचन संग्रह)

※ प्रवचनकार

प्रवर्त्तक श्री महेन्द्र मुनि 'कमल'

※ प्रकाशक—प्राप्ति स्थान

(१) श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, जोधपुर
मन्त्री श्री हरकराजजी मेहता
कटला बाजार, जोधपुर—३४२००१
फोन न. २३६४२

(२) तपोधन कार्यालय.
द्वारा श्री सोहनसिंहजी कावडिया
बी—२११, शास्त्री नगर
भीलवाडा (राजस्थान)
पिन—३११००१

※ मुद्रण व्यवस्था

दिवाकर प्रकाशन के लिए
बी० डी० प्रिंटर्स,
७/६७ मैनागेट पथवारी, आगरा-४

※ प्रथम आवृत्ति

फाल्गुन वि० सं० २०४६
मार्च, १९९३

※ मूल्य

२५)- पच्चीस रुपया मात्र
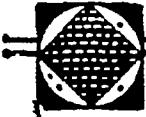
श्रद्धेय प्रवर्त्तक श्री का

जोधपुर वर्षावास : एक अमर स्मृति

पाठको के कर कमलो मे श्रमण संघीय प्रवर्त्तक श्रद्धेय पूज्य प्रवर्त्तक श्री महेन्द्र मुनिजी म० 'कमल' द्वारा जोधपुर वर्षावास मे दिये गए महत्वपूर्ण प्रवचनो के सकलन मे से कुछेक प्रवचन 'अन्तर के पट खोल' शीर्षक से प्रस्तुत पुस्तक के रूप मे अर्पित/समर्पित करते हुए हमारा हृदय आनन्द से निभोर है।

लगभग विगत् बीस वर्षों से हमारा सघ श्रद्धेय प्रवर्त्तकश्री के जोधपुर वर्षावास के लिए प्रयत्नशील रहा है। कई बार हमे यह तीव्र सम्भावना बनी भी कि इस बार हमारे सघ को वर्षावास का सौभाग्य सम्प्राप्त हो जाएगा, पर क्षेत्र स्पर्शना नही थी। हर बार हम निराश होते रहे पर हमने हमारे प्रयत्नो को विराम नही दिया अपितु अविराम हम हमारे आग्रह को दोहराते रहे।

जैतारण मे श्रमण सूर्य श्रद्धेय पूज्य मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी म० के जन्म शताब्दी समारोह के कार्यक्रम पर हम पुन वहा पहुचे, अपने आग्रह को रखा। इन्दौर, कुचेरा, उदयपुर आदि के पुरजोर आग्रह थे और सम्भावना इन्दौर अथवा कुचेरा की लग रही थी पर श्रद्धेय पूज्य प्रवर्तक श्री रूपचन्द्रजी म० 'रजत' की विशेष प्रेरणा रही और प्रवर्तक श्री महेन्द्र मुनिजी म० ने कुशालपुरा मे हमे आश्वासन प्रदान किया एव विधिवत् घोषणा गुलाबपुरा पहुंचने पर करके हम पर बड़ी कृपा की।

चातुर्मास हमारे यहां प्रतिवर्ष होते हैं, पर इस वर्ष का यह वर्षावास हर दृष्टि से गौरव गरिमापूर्ण एव उपलब्धियो से ओत-प्रोत रहा। समन्वय का सुन्दर वातावरण तैयार हुआ। प्रबुद्ध वर्ग विशेष सक्रिय रहा। नई पीढी मे विशेष जागृति आई। आशातीत उपस्थिति रही एव प्रचुर रूप से धर्माराधनाएं सम्पन्न हुई। प्रवर्त्तकश्री की ज्ञान गरिमा, स्वस्थ दृष्टि, स्पष्ट विचारधारा एव सयम साधना से जन-जन प्रभावित रहा। इस चातुर्मास को जोधपुर निवासी कभी भी विस्मृत नही कर सकते तथापि हर एक चातुर्मास के पश्चात् भी प्रवर्त्तक श्री के विचारो को पढकर लाभान्वित हो सके इस दृष्टि से हमारा प्रस्तुत प्रयत्न है। ढेर सारे प्रवचन और पड़े है, जिन्हे भी व्यवस्थित करके भविष्य मे आपके हाथो मे पहुंचाने का प्रयत्न किया जायेगा।

मुद्रण कला की दृष्टि से श्रीयुत श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' ने जो श्रम किया, तदर्थ साधुवाद के पात्र हैं।

श्री व. स्था. जैन श्रावक सघ
जोधपुर

सुमेरमल मेड़तिया
अध्यक्ष

हरकराज मेहता
मन्त्री

स्व-कथ्य

एक बार योगी आनन्दघनजी किसी शान्त सुरम्य स्थान पर गुफा के भीतर बैठे ध्यान कर रहे थे। आत्म-चिन्तन मे लीन योगीराज परम समाधिस्थ जैसे थे। तभी कुछ प्रेमी भक्तगण आए, और बाहर से पुकारा— महाराज! भीतर गुफा मे बद अंधेरे मे अकेले क्यो बैठे हो? बाहर पधारो, देखो, प्रकृति की छटा! कितना सुहावना मौसम है? कैसी सुरम्य हरियाली और नदी की कल-कल ध्वनि! जरा बाहर आकर देखो तो सही!

योगीराज ने कुछ देर बाद उत्तर दिया—अरे भाई! बाहर क्या देखना? बाहर की सुन्दरता और रमणीयता तो कुछ क्षणो की है। तुम जरा भीतर झाको। अपने ही भीतर देखो, कितना आनन्ददायी दृश्य है? आत्मा का चिन्मय स्वरूप देखो, अखण्ड आनन्दमय रूप देखो, जब भीतर देखोगे तो बाहर के दृश्य को भूल जाओगे। आत्मा का सौन्दर्य देखने वाला उसी मे रम जाता है, उसे बाहरी सुन्दरता मोहित नही कर सकती।

यह दृष्टि का भेद है। संसार मे सुख और आनन्द मानने वाला बाहर देखता है। शरीर की सुन्दरता देखता है। सोने चांदी, मणि-माणिक की चमक दमक देखता है। वस्तुओ की सजावट और कसावट देखता है। भवनो की भव्य बनावट देखकर प्रसन्न होता है, कभी ताजमहल की सुन्दरता, कभी बम्बई के इण्डिया गेट की भव्यता, कभी दिल्ली की कुतुब-मीनार और राष्ट्रपति भवन की विशालता देखकर चकित होता है। बाह्य दृष्टि वाला हमेशा बाहर ही देखता है। सुन्दरता असुन्दरता का बोध उसका बाहरी वस्तुओ पर निर्भर होता है। वह, शरीर की गोरी चमड़ी देखकर उसका मूल्यांकन करता है, परन्तु भीतर मे भरी मल-मूत्र आदि गन्दी वस्तुओ पर उसका ध्यान नही जाता।

दर्शन व अध्यात्म की भाषा मे ऐसे व्यक्तियो को बहिरात्मा कहा गया है। वे शरीर, इन्द्रिय, धन और बाह्य वस्तुपरक सुन्दरता में ही रमे रहते हैं।

योगीराज जैसे कुछ आत्मा होते हैं जिन्हे आंख खोलकर बाहर

ससार को देखने मे कुछ भी आनन्द नही आता, वे आँख मूद कर भीतर देखते हैं। यहा उन्हे शान्ति और समता के शीतल निर्मल झरने बहते दीखते हैं, जिनके दर्शन मात्र से ही परम शान्ति का अनुभव होता है। आत्मा की अनन्त ज्ञान शक्ति का उजास होने लगता है जिसके आलोक में दीवारो के पीछे, पहाड़ो की ओट मे, सात समुन्दर पार जो कुछ भी घट रहा है, आपके मन के भीतर जो उथल-पुथल मच रही है वह सब उनके ज्ञान-चक्षुओ से प्रत्यक्ष दीखता है। वे जितने भीतर, जितने अन्दर की गहराई मे उतरते हैं उतना ही अखण्ड आनन्द, चिन्मय सौन्दर्य और परम शीतलता का अनुभव कर वे उसी मे मग्न हो जाते हैं। ऐसी योग-आत्माओ को दर्शन की भाषा मे अन्तरात्मा कहा गया है। अन्तर आत्मा ही महात्मा बनती है। और फिर शुद्ध आत्मा बनकर परमात्मा के रूप मे प्रतिष्ठित होती है।

वास्तव में बहिरात्मा और अन्तरात्मा, दो तत्व नही हैं किन्तु एक ही तत्व के दो पहलू हैं। एक बहिर्मुखी है, दूसरा अन्तर्मुखी है। तिरुपति के मन्दिर मे हजारो लोग दर्शन करने जाते हैं। बडी लम्बी लाईनें लगती हैं। श्रद्धालु भक्त सैकडो हजारों मील दूर से आता है। हजारो रुपया खर्च करता है। लम्बी क्यू में घंटो तक खडा रहता है, आखिर क्यो ? तिरुपति बालाजी की मूर्ति और फोटो तो हजारो लाखो ही मिलेंगी। कही भी बैठकर दर्शन कर सकता है ? आखिर इतने कष्ट उठाकर वहां जाने का मतलब क्या है ?

वैष्णोदेवी के मन्दिर मे लाखो लोग जा रहे हैं। प्रतिदिन १०-१२ हजार की भीड़! ८-१० घटा क्यू मे खड़े रहो। आखिर किसलिए इतना आकर्षण है ?

इसलिए कि वहां मन्दिर के भीतर विराजित प्रतिमा के दर्शन होते हैं जिसे श्रद्धालु साक्षात् भगवान और देवी माता मानने का विश्वास लिए होते है ?

यह मान्यता/यह आस्था बाह्य दर्शन के लिए नही है। पहाड़ों और वादियो को देखने के लिए कोई नही जाता, न मन्दिरो की छटा देखने के लिए कोई जाता है, परन्तु जाता है मन्दिर के अन्दर विराजित देवतात्मा का दर्शन करने ! देवतात्मा का दर्शन करने पर श्रद्धालु अपनी यात्रा को सफल समझ लेता हैं। सार्थकता अनुभव करता है।

यही बात बाह्यदर्शन और अन्तरदर्शन की है। बाह्यदर्शन मे तो हजारो

जन्मों से, लाखों करोडों वर्षों से आत्मा भटक रही है। परन्तु यह यात्रा सफल नहीं हुई, पूर्ण नही हुई। इस शरीर के विग्रह के भीतर, देह-मन्दिर के भीतर विराजित चैतन्य देवता का दर्शन होने पर ही यात्रा पूर्ण मानी जायेगी। और इस अन्तर दर्शन के लिए आपको बाहर से सिमटकर अन्तर्मुखी बनना पड़ेगा। आत्म-दृष्टि जगानी पड़ेगी। वस्तु-परक, पदार्थ-परक दृष्टि से हटकर तत्व-परक और चैतन्य-परक दृष्टि जगानी होगी। बस, दृष्टि बदल गई, अन्तर्दृष्टि जग गई,तो शरीर और आत्मा के बीच पड़ा पर्दा हट जायेगा। अन्तर का पट खुल जायेगा और वहां विराजित साक्षात् आत्म-देवता के दर्शन होने लगेंगे। आत्मा के भीतर छुपे सद्‌गुणो व शुभ शक्तियों का भडार आपके सामने होगा। चर अचर जगत के समस्त सौन्दर्य को देखने की दृष्टि खुल जायेगी तो आप यहा सब कुछ देख सकेंगे। यहां बैठे-बैठे ही आप सब कुछ पा लेंगे।

प्रस्तुत प्रवचन पुस्तक का नाम है—अन्तर के पट खोल, इसमे जागृति मूलक, आत्म उद्‌बोधन करने वाले और आत्मा पर आये मोह के पर्दे को हटाने वाले प्रेरक प्रवचनो का एक सकलन है। इन प्रवचनों को पढ़ने से, इनके मनन से आपके जीवन मे आत्मिक सौन्दर्य खिल सकेगा। आत्मानुभूति की सवेदना जागृत हो सकेगी तो मैं अपने इन प्रवचनो को सार्थक समझूंगा और आप भी समझेगे कि आपकी जीवन-यात्रा, ससार यात्रा सफल हो रही है अस्तु !

जोधपुर के यशस्वी सफल चातुर्मास के उपलक्ष्य मे श्री संघ के पदाधिकारी तथा सदस्यगण इस पुस्तक का प्रकाशन कर रहे हैं। सर्व साधारण पाठक उनके इस प्रयत्न से अवश्य ही लाभान्वित होगा। और चातुर्मास की एक सार्थक स्मृति भी अक्षुण्ण बनी रहेगी। इस शुभ प्रयत्न के लिए वे सभी श्रेयोभागी हैं।

साथ ही मेरे आत्मीय बधु, सम्पादन लेखन एव मुद्रण कला मर्मज्ञ श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' ने मुद्रण की दृष्ठि से पुस्तक को साज सवार दिया है, कलात्मक रूप प्रदान किया है। उनके स्नेह सहकार की स्मृतिया मेरे मन को अभिभूत कर लेती हैं। धन्यवाद।

—मुनि महेन्द्र कुमार 'कमल'

महावीर भवन,
जोधपुर,
कार्तिक पूर्णिमा

क्या....   कहां....

अन्तर के पट खोल

चन्देसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागरवर गभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसन्तु ॥

जय महावीर, जय महावीर
त्रिशला नन्दन, जय महावीर
कुण्डलपुर के जय महावीर
पतित पावन जय महावीर
सत्य विवेचक, जय महावीर
कष्ट विमोचक जय महावीर
करुणा सिंधु जय महावीर
जन जन बन्धु जय महावीर
मोह विजेता, जय महावीर
शत शत बन्दन, जय महावीर

महानुभावो !

अभी-अभी आपने और हमने श्रद्धाप्लावित मन के साथ परम मंगलमय परमात्मा भगवान वीतराग महावीर की मगल प्रार्थना की है। इससे पूर्व मैंने जो गाथा आपके समक्ष रखी है। यह चतुर्विंशति जिन सस्तव अर्थात् लोगस्स के पाठ की अन्तिम गाथा है। इसमे कहा गया है कि हे प्रभु ! आप चन्द्र से अधिक निर्मल, सूर्य से अधिक तेजस्वी एव सागर से अधिक गम्भीर हैं। सचमुच, यदि हम गहराई से विचार चिंतन करें तो जो परमात्म स्वरूप है, वही आत्म स्वरूप है और जो आत्म स्वरूप है, वही परमात्म स्वरूप है।

तत्व को समझने वाले सुज्ञ स्वाध्यायी सज्जन सम्यक् प्रकार से जानते हैं कि आत्मा मे और परमात्मा मे, जीव मे और ब्रह्म मे, भक्त और भगवान मे अथवा साधक और सिद्ध मे कोई अन्तर नही है। यदि अन्तर कोई है तो वह मात्र कर्म का है। कर्मो से आबद्ध आत्मा ससार का आत्मा है और मुक्त जो है वह परमात्मा है। आप बोलते भी तो हैं—

सिद्धा जैसो जीव है, जीव सोही सिद्ध होय।
कर्म मैल का आतरा, बूझे विरला कोय॥

किसी अन्य कवि ने भी कहा है—

आत्मा-परमात्मा मे, कर्म का ही भेद है।
कर्म-बन्धन तोड दे, फिर भेद है ना खेद है॥

यह सारी प्रतीति, तत्व बोध के बिना कतई सम्भव नही है। आज की चर्चा मे हम इसी पर कुछ चिन्तन करते हैं। हमारे जैन आगमों मे तत्व नौ माने हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, सवर, निर्जरा, वन्ध और मोक्ष। इनमे दो तत्व मुख्य हैं—जीव और अजीव। स्थानांग सूत्र में कहा है —द्रव्य दो हैं—जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य। नव तत्व कहे अथवा षट् द्रव्य माने, सब इन दो में समाविष्ट हो जाते हैं। जीव और अजीव के अतिरिक्त सातो तत्व जीव और अजीव (पुद्गल) के सयोग अथवा वियोग से वने हैं। षट द्रव्य मे धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल ये पाचो अजीवद्रव्य है। अजीव तत्व या अजीव द्रव्य मे इन सबका समावेश हो जाता है। वस्तु के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए उनके भेदो का विस्तार करके समझाया है। परन्तु मुख्यता दो की ही है—जीव और अजीव। कही इन्हे तत्व कहा है और कही पर द्रव्य। यह विवेचन शैली का अन्तर है। परन्तु द्रव्य या तत्व के रूप मे बताने का उद्देश्य एक ही है कि जीव और पुद्गल के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान करके आत्मा अपने स्वरूप मे स्थित हो। इसके लिए अपना स्वरूप क्या है ? और पर का स्वरूप क्या है ? स्व से हटकर आत्मा पर मे परिणत होने पर संसार में कैसे भटकता है, बन्धन मे कैसे बधता है और स्व-स्वरूप मे स्थित होने पर बन्धन से कैसे मुक्त होता है। तत्व ज्ञान मे यही बताया गया है और इसीलिए तत्व बोध की, तत्व ज्ञान की आवश्यकता रहती है। किसी कवि ने बहुत ही मार्मिक रूप से कहा है—

वाहर की आँख खुलती है, तो जहान दिखता है।
और भीतर की आँख खुलती है, तो भगवान दिखता है॥

जवाब दो, जरा जोधपुर वालो! आपको क्या देखना है ? जहान को तो आप और हम सब देख ही रहे हैं, न केवल आज ही देख रहे है, इस जन्म मे ही नही, अनन्त जन्मो मे देखते रहे है, पर जिसे देखना है उसे देख नही पाए। इसीलिए तो पुनरपिजनन पुनरपिमरण बार-बार जन्म, जरा और मृत्यु के दुःखो की चक्की मे पिसते रहे हैं। दुःख हमारा स्वभाव नही है पर स्वरूप बोध के अभाव मे शुद्ध दर्शन एव निर्मल

चारित्र से हम अपने आपको नही जोड पाए इसीलिए क्लेश बढते ही चले गए। केवल एक बार अपने आपको ठीक ढंग से, सम्यक् प्रकार से समझ लेने की जरूरत है। कितनी अच्छी पंक्तियां हैं यह—

आप मे जब तक कि कोई आप को पाता नही।
मोक्ष की मजिल तलक, हरगिज कदम जाता नही ॥

भाइयो !

भगवान महावीर के दर्शन की सर्वाधिक विशिष्टता भेद-विज्ञान है। भेद विज्ञान का अर्थ है कि स्व और पर के, जीव और अजीव के भेद, स्वरूप को भली भांति समझ लेना। यह दो प्रकार से जाना जा सकता है—विधेय मार्ग और निषेध मार्ग। मैं जीव हूं, आत्मा हूं, क्योकि मैं चैतन्य हूं। ज्ञान स्वरूप हूं। ज्ञान के द्वारा ज्ञेय पदार्थों को जानने वाला ज्ञाता हूं, अक्षय हूं, अमर हूं और शुद्ध-बुद्ध हूं। दूसरा मार्ग यह है कि मैं जड नही हूं, शरीर नही हूं, इन्द्रिय नही हूं, मन नही हूं, बुद्धि नही हूं। मैं इन सब जड पदार्थो से भिन्न हूं। व्यक्ति जो कुछ नहीं है, उसका निषेध कर सकता है परन्तु वह अपने अस्तित्व का निषेध नही कर सकता। इसलिए पर से भिन्न स्व-स्वरूप का यथार्थ परिज्ञान ही भेद विज्ञान है। कई बार मैं कहा करता हूं—

जब से उनका गीत सुना है और गीत झूठे लगते हैं।
जब से मन का मीत मिला है और मीत झूठे लगते हैं।
लाख-लाख,दीपों से रोशन करना चाहा हमने घर को—
जब से भीतर दीप जला है और दीप झूठे लगते हैं ॥

सचमुच, भीतर का दीप जलते ही, सारे सशय स्वत समाप्त हो जाते हैं। स्थानाग सूत्र मे आता है—एगे आया—आत्मा एक है। स्वरूप की दृष्टि से आत्मा मे कोई भेद नही है। वही इसी आगम के आठवें ठाणे में आत्मा को आठ प्रकार का कहा है—द्रव्यआत्मा, कषायआत्मा, योगआत्मा, उपयोग आत्मा, ज्ञान आत्मा, दर्शन आत्मा, चारित्र आत्मा, वीर्य आत्मा। प्रथम कथन शुद्ध आत्म स्वरूप की अपेक्षा से है और द्वितीय कथन व्यवहार दृष्टि से है, इसलिए विरोध जैसी बात नही है। विरोध और अनुरोध तभी तक रहते हैं जब तक सम्यक् बोध नही होता। बोध होते ही न कोई विरोध है, न अवरोध है और न अनुरोध है। इसलिए बोध और शोध की जरूरत है।

एक बार मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने हनुमान से पूछा—कि तुम कौन हो ? हनुमान ने जो उत्तर दिया बड़ा महत्वपूर्ण है—

देह दृष्ट्या तु दासोऽहं, जीव दृष्ट्या त्वदंशकः ।
आत्मदृष्ट्यास्त्वमेवाऽहं इति मे निश्चिता मति. ॥

देह की दृष्टि से मैं आपके चरणो का सेवक, दास हूँ और आत्मा की दृष्टि से हनुमान मे और राम मे कोई भेद नही है, जो राम है वही हनुमान है और जो हनुमान है वही राम है। राम गदगद् हो गए और हनुमान को हृदय से लगाकर बोल पड़े – हनुमान ! तुम सेवक ही नही हो, परम तत्वज्ञ भी हो।

सचमुच सम्यक् ज्ञान ही है, सच्चा ज्ञान है। पुस्तको को जानना ज्ञान नही है और न दुनिया को जानना ही ज्ञान है किन्तु, अपने आपको जानना, स्वरूप को समझना ही सच्चा ज्ञान है। दुनिया को देखना दर्शन नही है, किन्तु अपने आपको देखना दर्शन है। आज हमे दुनिया का ज्ञान है किन्तु अपना ज्ञान नहीं है। महावीर ने कहा था—जे **एग जाणइ से सव्व** जाणइ' अर्थात् जो एक आत्म स्वरूप को जानता है वह सवको जानता है और जो सवको जानता है पर एक अपने आपको नही जानता है वह सब कुछ जानकर भी कुछ भी नही जानता है। किसी शायर के शब्दो मे कहा जा सकता है—

दूसरो से मिलना वहुत आसान है साकी ।
अपनी हस्ती से मुलाकात वडी मुश्किल है ॥

जिस युग मे आप हम जी रहे हैं, इसे विज्ञान का युग, विकास का युग कहा जाता है। आज कहते हैं कि मनुष्य चन्द्रलोक पर पहुँच गया है। पर वह अपने अन्दर नही आ सका है। इसलिए चन्द्रलोक पर पहुच कर भी वह मिट्टी ही लेकर आया है। मुझे याद है, इन्दौर चातुर्मास के समय एक वार मैंने लिखा था—

चांद पर करके चढ़ाई क्या मिला इन्सान को।
धूल पत्थर ने मिलाया धूल मे अरमान को॥
काश ! वह इतनी चढाई करता अपने आप पर—
'कमल' पा जाता कभी का वह परम भगवान को॥

यह कहते हुए पीड़ा होती है कि मनुष्य भटक-सा गया है। वह बाहर दौड रहा है। परन्तु इस दौड मे वह उससे दूर होता जा रहा है जो उसके अन्दर ही है। जो वाहर नही है, उसे वाहर ढूंढ रहा है और जो उसके अन्दर है वहां वह आख मूंदकर बैठा है। आज आवश्यकता इस वात की है—

बाहर के पट बन्द कर, अन्तर के पट खोल।

अन्तर के पट खुलने मात्र की देर है। पट खुलते ही अपने मन के मन्दिर में भीतर उस दिव्य ज्योति के संदर्शन करके वह सारी की सारी अन्तर बाह्य पीडाओं से अपने आपको मुक्त करके आनन्द विभोर होकर अपनी भूल को कबूल करते हुए बोल उठेगा –

आपा को खोजने बाहर चले।
आह ! पहला ही कदम गलत पड़ा ॥

दर असल, जीवन में जितनी भी समस्याएं हैं उनका मूल, अज्ञान है। विकृतियों के प्रति समर्पण है। परभाव के प्रति सम्मान है। पदार्थो के प्रति निष्ठा है। विभाव की दासता है। परिहेय से लगाव है। उपादेय से अलगाव है। एक बार अपने स्वरूप का बोध करने मात्र की जरूरत है। सम्यक् बोध के बाद मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि कभी भी व्यक्ति क्षण मात्र के लिए भी परेशान नही हो सकेगा। एक बार कबीर को हसी आ गई थी उन्होंने लिखा भी—

पानी में मीन पियासी।
मोहे सुन-सुन आवे हांसी॥

पानी में रहकर मछली प्यासी है तो सचमुच यह हंसी की ही बात है। ऐसी ही हसी उन लोगो को बात सुनकर आती है जो कहते है कि हम दु:खो हैं परेशान हैं, पीड़ित हैं, सुख का सागर है स्वय के पास और अपने को दु:खी यदि कोई समझता है तो उस अभागे का अज्ञान ही है। मेरे गुरुदेव कई बार कहा करते थे—

खाख मे छोरो, गांव मे हेरो। लड़का स्वय के पास था और पूरे गांव को सिर पर ले लिया कि मेरा बच्चा कही खो गया है। सुख ही सुख है आपके पास और आप यदि निराश होते है तो बात स्पष्ट है कि अपने आपका अहसास नही है। अहसास कीजिए, आपके मन का मोर गा उठेगा —

हम वासी वा देश के, जहाँ बारह मास विलास।
प्रेम झरे विकसे कमल, तेज पुंज परकास॥

पर, ध्यान रखें बात एक ही है, बाहर से नही, भीतर से जुड़ने की अपेक्षा है। क्योकि यह तथ्य सर्वथा स्पष्ट है—

बाहर आखिर बाहर ही है, बाहर ही रह जाता है।
सहज स्फुरित अन्तर का चित हो परम ज्योति प्रगटाता है॥

स्वाध्याय के क्षणों में, एक बार पढ़ा था—

जो झायइ अप्पाण, परमसमाहि हवे तस्स।

जो आत्मा का ध्यान करता है, वह साधक निश्चित रूप से परम समाधि की सप्राप्ति करता है। समाधि के पश्चात् आधि, व्याधि और उपाधि मौन हो जाती है। अन्त में इन दो पंक्तियों के साथ मे आज की चर्चा को विराम देता हूँ—

मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर कुछ मर्तबा चाहे।
दाना खाक में मिलकर, गुले गुलजार होता है॥

२
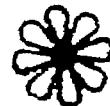
निराशापूर्ण दृष्टिकोण : जीवन के लिए घातक

महानुभावो !

जीवन सुख दु ख की आंख मिचौली है। जीवन की नाव आशा और निराशा की लहरो पर डूबती-उतराती है। निराशा के पल बहुत भारी होते हैं। ऐसा लगता है मानों किसी ने पलको पर भारी पत्थर बाध दिए हो। ऐसा प्रतीत होता है मानो घने काले साये धीरे-धीरे हमारी तरफ बढ रहे हैं।

निराशा का ग्रहण जब लगता है तो सूर्य और चन्द्रमा दोनो की चमक छिप जाती है। निराशा के पल मे व्यक्ति बडा से बडा अपकार कर बैठता है। निराशा के पल जब भी कभी जीवन मे आते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो एक ऐसी काली रात शुरू हो गई जिसका कहीं कोई अन्त नही, निराश व्यक्ति अपने दु:खो को बहुत बढ-चढकर प्रस्तुत करता है।

जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण ही बदल जाता है। उसे हर पल प्रतीत होता है कि अशुभ घटित हो जायेगा।

मुझे एक मित्र की याद आती है। दुःख और गरीबी ने उसे इतना नैराश्यपूर्ण बना दिया था कि वह हर पल अनर्गल बातें ही सोचता रहता। कभी सामने से आते हुए किसी वाहन को देखता तो सोचने लगता कही यह मुझे कुचल तो नही देगा। आकाश मे बादल के आते ही सोचने लगता मैं बरसात से भीगकर बीमार न पड़ जाऊ। जरा सी भूख नही लगती तो सोचता कही कैन्सर तो नही हो गया है। बस मे कोई व्यक्ति पास आकर बैठता तो लगता कही यह चोर डाकू या हत्यारा तो नही है। कोई भी उसके हित की बात करता तो उसे मक्कारी और दुष्टता ही नजर आती।

वह इस निराशापूर्ण दृष्टिकोण के कारण सबसे दूर हो गया। कोई उससे बात करना भी पसन्द नहीं करता था। वह रात-दिन कुढने लगा,

उसकी स्थिति उस किताव की तरह हो गई थी, जिसे दीमक लग गया हो। दीमक धीरे-धीरे उसके जीवन के शब्द और उसके अर्थ को खाने लगा। वह वक्त से वहुत पहले ही वूढ़ा हो गया।

जैसी वीमारियों के वारे मे सोचा करता था, वैसी ही वीमारियों से ग्रस्त होकर उसने समय से पहले ही दम तोड़ दिया। निराशापूर्ण व्यक्ति सदैव शंकाओं से घिरा रहता है। मुस्कान उसके चेहरे पर आते-आते लौट जाती है। वो एक काच के टूट जाने से ऐसा घवरा उठता है, मानो सारे चेहरे रूठ गये हैं, वह एक फूल को मुरझाते हुए देखता तो सोचता मानो सारे उपवन में आग लग गई हो।

मैं ऐसे निराशा के घने अंधकार मे भटकने वाले लोगो का ध्यान एक नन्हे से दीपक की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। जो आशा का प्रतीक है—

दीपक कितना नन्हा, लेकिन चतुर्दिक दूर-दूर तक फैले अधकार को अपनी एक दृष्टि से वेध देता है। रात मे उजाला न हो तो किस प्रकार से डर लगता है और अनेक आशकाये जन्म लेती हैं। इसी प्रकार से यदि व्यक्ति आशा का संबल ग्रहण कर ले तो जीवन की अनेक समस्याएं स्वत ही समाप्त हो जाती हैं। दीपक कैसा इस सृष्टि के कण-कण को उद्घाटित करता है। माना कि आकाश मे सावन की काली घटायें छाते ही कुछ समय के लिए चांद छिप जाता है, चांदनी खो जाती है। रास्ते कीचड से भर जाते हैं। अनेक जगली जीव जन्तु, सांप, बिच्छू, कान-खूजरे अपने-अपने विलो से वाहर निकल आते हैं लेकिन क्या यह स्थिति सदा ऐसी ही रहती है। वक्त वदलता है, आकाश की काली घटाएं अदृश्य हो जाती हैं।

नीला स्वच्छ आसमान कितना प्रिय लगता है और शरद की चांदनी चारो ओर वरसती है, तव कैसा ख्याल आता है। वादल और मनहूस दिखाई देने वाली काली घटाओ के वाद हमें शरद की चांदनी इसलिए अधिक प्रिय लगती है, क्योकि हमने काली घटाओ को देखा है। यदि व्यक्ति प्रकृति से यह प्रेरणा ग्रहण करे तो उसे दु:ख और मुसीबत के क्षण सपने से प्रतीत होंगे।

किसी कवि ने वहुत ही प्रभावी वात कही है—

यह जिंदगी वैसे तो बहुत ही खूबसूरत है।
पर इसे जरा ठीक से समझने की जरूरत है॥
अगर नही समझे तो यह है शैतान का मंदिर—
और समझ गए तो यही बस भगवान् की मूरत है॥

और भी इस बारे में कहा जा सकता है—

आप हर मंजिल को मुश्किल समझते हैं।
हम हर मुश्किल को मंजिल समझते हैं॥
बड़ा फर्क है आपके और हमारे नजरिये मे—
आप दिल को दर्द और हम दर्द को दिल समझते हैं॥

प्रिय श्रोताओ ! मुझे अपने बचपन की एक घटना याद आती है—मैं अपने बाल-सखाओ के साथ एक नदी के किनारे खेल रहा था। हम बच्चे अपने पैरों पर नम रेत के घर बनाते थे, उसे बार-बार सवारते थे, लहरें आती और उनको तोडकर चली जाती। तब हम रोते नही थे, पर लहरो के लौटते ही फिर से घर बनाने मे व्यस्त हो जाते थे।

जो निराशा के भंवर मे फँसे हुए हैं मैं उन्ही से कहना चाहूँगा कि समुद्र मे कितने तूफान आते हैं, न जाने कितनी नौकाए डूब जाती हैं, लेकिन क्या मनुष्य ने यात्रा करना छोड दिया है ? मनुष्य हर बार दुगुने उत्साह के साथ लहरों का सामना करने के लिए उतर पडता है। चिडियों को देखिए—हमारे आंगन में आती है और तिनके लेकर कैसा छोटा-सा घर बनाना शुरू करती है। तिनका अनेक बार उसकी चोंच से गिरता है लेकिन वह न हिम्मत हारती है और न चीखती है, अपितु उसी चहचहाट के साथ तिनके को उठाती है और वह घौसला हम सबके लिए एक उपदेश का स्वर है जिसे हमे अपनी आत्मा से बनाना चाहिए।

आशा का दृष्टिकोण तो हम सागर से भी सीख सकते हैं। आसमान से न जाने कितनी आग बरसती है। सागर उसे सहन कर लेता है तभी तो मोतियो को जन्म देने मे सक्षम होता है।

ये पंक्तियां सहज ही मेरो जुबान पर मचल रही हैं—

बोल मनुज ! क्यों विवश बना है, क्यो आसू टपकाये खारे ?
काले बादल घिर आये तो क्या सूरज भी पथ बदलेगा ?
श्यारो का हो झुण्ड सामने, क्या केशरी बच निकलेगा ?

सौ सौ सूरज गर्मी फेंके, क्या सागर खाली हो जाएगा ?
झझावातो से डर करके, एवरेस्ट भी क्या हिल जायेगा ?
ऐसा कभी हुआ न होगा, तो फिर मानव तू क्यो हारे ?
बोल मनुज ! क्यो विवश बना है, क्यो आँसू टपकाये खारे ?

निराशापूर्ण दृष्टिकोण जीवन के लिए बहुत घातक है। यह बालक को बूढा बना देता है और यौवन की आंखो मे जीने की इच्छा का दीप बुझा देता है।

आज न जाने कितने युवक निराशा के गहरे अधकार में डूब रहे हैं। किसी को पढाई करने के दो साल बाद भी नौकरी नही मिली तो वह आत्मदाह कर बैठा। किसी की कोई प्रिय वस्तु खो जाती है तो वह पागल हो जाता है। समस्याओ के प्रभाव को यद्यपि नकारा नही जा सकता पर एकाततः व्यक्ति आशा और उल्लास को भूलुठित ककेर निराशा के गहन गर्त मे ही यदि उतर जाये तो समाधान कतई सभव नही होता, अत इन्सान को अपने विश्वासो को मृत नही होने देना चाहिए।

सारा ससार आशा के सहारे ही टिका हुआ है, इसी से तो जीवन का कायाकल्प हो सकता है। जिनके दिल उजड़े हैं, आंखें वीरान हैं और पांव थके-थके से हैं उन्हे मैं कहना चाहूँगा—

निराश दिल मे, विश्वास का दिया जलाइए।
जिदगी को जिदगी की तरह बिताइए ॥

भगवान् महावीर स्वामी का जीवन समस्याओ, उपसर्गो और विषमताओ के तूफान मे जलते हुए एक ऐसे दीप की याद दिलाता है। उन्हे न जाने कितने उपसर्गों का सामना करना पड़ा। कभी पत्थरो की वर्षा हुई तो कभी तीक्ष्णमुखी चीटियो ने शरीर का छेदन किया, कभी बिच्छू और भीमकाय सर्पों ने दश मारे तो कभी नेवले ने नाखून और मुंह से शरीर को विदीर्ण करने का प्रयास किया। कभी दीमक ने शरीर को छलनी करने की कोशिश की तो कभी कानो मे तीक्ष्ण मुख वाले पक्षियो ने चोचो से तीक्ष्ण प्रहार किया, कभी दोनो पैरो के मध्य अग्नि प्रज्वलित हुई तो कभी आंधी ने शरीर को ऊपर उठाकर गिराया। कभी कलंक कलिका वायु ने चक्र की तरह गोल घुमाया तो कभी घुटनों तक जमीन मे धँसा दिया।

वीर प्रभु इन सभी स्थितियो मे अडोल रहे तो सगम देव भी लज्जित हो गया।

सत्पुरुष कभी निराश नही हुए। वे जीवन के तूफानो में अविचल रहते हैं तभी पूज्य बन जाते हैं। अभिज्ञान-शाकुन्तलम् मे कहा गया है—

मनु प्रवाते पि निष्कम्पा गिरयः !

अर्थात् घोर वातुल मे भी पर्वत कम्पित नही होते। उसी तरह दृढचेता सत्पुरुष कष्टो की झझा से विचलित नही होते।

वस्तुत जिसके पास आशा का सम्बल है, उसकी कभी पराजय नही होती।

अंत में एक बार फिर जोधपुर वालो एव सभी श्रोताओ से कहना चाहूँगा कि—

पखो पर विश्वास नही, वह परिंदा क्या ?
चरणो पर विश्वास नही, वह चरिंदा क्या ?
सांस लेने का नाम ही जिंदगी नही है—
अपने आप पर विश्वास नही, वह जिंदा क्या ?

३ | कषाय प्रत्याख्यान : स्वरूप और परिणाम

महानुभावो !

हमारे मुनिश्री अभी कुछ समय पूर्व आपके सामने कषाय परित्याग का सन्देश प्रदान कर रहे थे। आत्म-हित सम्पादित करने की अभीप्सा जिसके मन मे है, उसे कपाय से मुक्ति लेने का अभ्यास करना नितान्त आवश्यक है। क्रोध, मान, माया और लोभ इस प्रकार कषाय चार हैं। कषाय शब्द का जो अर्थ है उस पर विचार करते हुए मनीषी विचारको ने कहा है कि कष का अर्थ है ससार। उसकी आय अर्थात् लाभ का नाम कषाय है।

इनके चक्कर मे पडकर आत्मा सकषाय – सराग हो जाती है, जिससे आत्मा मे विषमता आती है। इष्ट-अनिष्ट, सुख-दुख आदि बाह्य स्थितियों मे मन कषाय, राग द्वेष से रगा होने के कारण ससार अर्थात् कर्म बन्ध या यूं कहे कि कष्ट की लम्बी परम्परा को बढाता रहता है। कषाय का त्याग होने से वीतरागता आती है और वीतरागता आते ही मन सुख-दुःखादि द्वन्द्वो मे सम हो जाता हैं।

तो, चार कषायो मे प्रथम कषाय जिसे क्रोध कहा गया है इस पर आज आपके बीच में कुछ चर्चा करने का मन है। पावापुरी के समवसरण मे परम मगल परमात्मा भगवान महावीर ने कहा था कि क्रोध कषाय पर जो साधक विजय प्राप्त करता है वह क्षांति को प्राप्त होता है। क्रोध-वेदनीय कर्म का बन्ध नही करता एव पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है। स्वाध्यायी भाई-बहनें इस बात को सम्यक् प्रकार से समझते हैं कि क्रोध-मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला जीव का प्रज्वलनात्मक परिणामविशेष क्रोध है। क्रोध से जीव कृत्य-अकृत्य के विवेक से विहीन बन जाता है, क्योंकि क्रोध उस विवेक को नष्ट कर देता है। इसका परिणाम बहुत दु.खद एवं दयनीय होता है। इस प्रकार के निरन्तर विचार से जीव क्रोध पर विजय पा लेता है।

एक विचारक ने क्रोधी की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है कि क्रोधी व्यक्ति जब क्रोध करता है तो वह क्रोध के समय दिमाग के दरवाजे को बन्द कर देता है एक अपने मुह के द्वार को खोल देता है। अर्थात् क्रोधी व्यक्ति को क्रोध के क्षणों मे दरअसल यह ख्याल ही नही रह पाता कि मेरे लिए करणीय क्या है और अकरणीय क्या है ? आज जन-जीवन मे चारों ओर हम समस्याओ का जो बहुत बड़ा अम्बार देखते हैं उनमे क्रोध भी एक प्रमुख कारण है। छोटी-छोटी सी बातो को लेकर क्रोध के आवेश मे आकर कई बार अनेक स्थानो पर ऐसे दु:खद प्रसंग बन जाते हैं कि मन का सारा माधुर्य, कटुता मे परिवर्तित हो जाता है और व्यक्ति जीवनभर आहें भरने के लिए विवश हो जाता है।

मुझे याद है, एक जगह मैं गोचरी के लिए गया। सामान्य सी बात को लेकर पति-पत्नी झगड़ रहे थे। क्रोधी व्यक्ति अन्धा होता है वह क्रोध मे बोल रहा था—चुप रह। मैं अभी तुझे कच्ची को खा जाऊंगा। अचानक तभी मुझे अपनें घर आंगन मे देखकर वे शान्त जरूर हो गए। गोचरी का आग्रह किया। मैंने कहा - 'पहले यह बताओ, अभी तुम क्या कह रहे थे। खाने को बहुत चीजे हैं न ? अभी तुम किसे खाने की बात कह रहे थे ? तुम मानव हो, दानव तो नही।' वह शर्म से पानी-पानी हो गया एव विवेकनिष्ठ था तो भूल कबूल भी करली एव भविष्य मे कभी भी उत्तेजित न होने का संकल्प भी कर लिया पर वह स्पष्ट कह रहा था कि मैं क्या बोल गया, मुझे कुछ भान ही नही रहा। क्रोध के सम्बन्ध मे कहा भी है—

क्रोध मानसिक दुःख का, प्रमुख हेतु पहचान ।
आयु-रक्त की अल्पता, करता यही प्रदान ॥
मर जाने पर नरक का, दिखला देता द्वार ।
करिए ऐसे क्रोध का, डट करके प्रतिकार ॥

एक बार मैं वाल्मीकि रामायण को देख रहा था—उसमें क्रोध के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा गया, उपयोगी होने से आपके सामने रख रहा हूँ—

क्रोधः प्राणहरः शत्रु क्रोधो मित्र मुखो रिपुः ।
क्रोधो ह्यसिर्महातीक्ष्ण सर्वं क्रोधोऽपकर्षति ॥
तपते यजते चैव यच्च दान पयच्छति ।
क्रोधेन सर्वं हरति, तस्मात् क्रोधं विसर्जयेत् ॥

अर्थात् क्रोध प्राण हरण करने वाला शत्रु है, क्रोध मुंह में रहने वाला

वैरी है, क्रोध महा तीक्ष्ण तलवार है, क्रोध सब प्रकार से गिराने वाला है, क्रोध, तप, यज्ञ और दान सभी का हरण कर लेता है। अतएव क्रोध को छोड देना चाहिए।

हमारे कई भाई बहन कहते हैं कि हम क्रोध नही करना चाहते हैं पर फिर भी आ जाता है। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि आप यदि नही चाहते हैं तो फिर आप निश्चिन्त रहिए कभी भी क्रोध नहीं आएगा। आप जितने सजग रहेगे उतने ही क्रोध से बच सकोगे। मेरे पूज्य गुरुदेव कई बार कहा करते थे कि बर्तन जहाँ होते हैं वे आपस मे कभी बज सकते हैं पर बर्तन को इतना न बजाएं कि नष्ट हो जाए। आप यह सुनकर हंस रहे हैं पर हंसकर टालना मत, गहराई से इस बात पर विचार चिंतन करने की आवश्यकता है।

अभ्यास निरन्तर ऐसा कीजिए कि क्रोध आए ही नही और कभी आ भी जाए तो तत्काल पश्चात्ताप करके यह तेजस्वी सकल्प अपने मन मे कर लें कि अब मैं पूरा ध्यान रखूंगा। कई लोगो की आदत होती है—बातो-बातो मे उखड जाते हैं, साधारण सी बातो को तूल देकर झगड़ पड़ते हैं। यदि तुरन्त क्रोध का निवारण हो जाए तो ठीक है, अन्यथा न केवल शारीरिक दृष्टि से अपितु मानसिक दृष्टि से इतनी बडी हानि हो जाती है कि जिसकी कभी कल्पना भी नही की जा सकती। कभी भी भीतर मे ग्रन्थि को मजबूत मत बनने दो। बहुत दिनो तक टिका हुआ क्रोध वैर कहलाता है और वैर एक ऐसी असाध्य बीमारी है कि जिसका दुःखद फल मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से तो आता ही है पर उसका कटु परिणाम दैनिक जीवन मे भुगतना पडता है, वैर वृद्धि से असन्तुलन बढता है और यह असन्तुलन पूरी जीवन यात्रा को गडबडो प्रदान करता है।

क्रोध तात्कालिक और क्षणिक प्रमाद है पर वैर लम्बी बीमारी है। क्रोध पर यदि विवेक रखकर नियन्त्रण रखा जाय तो वैर, विरोध, प्रतिशोध जैसी विषमताए बढे गी ही नहीं। एक विचारक ने कभी कहा था कि जो व्यक्ति क्रोध के वश मे है, वह एक ऐसे दैत्य के वश मे है जो न जानें कब मनुष्य को पतन के गहरे गर्त मे धकेल दे।

हार्ट, ब्लडप्रेशर, अलसर, ब्रेन हेमरेज आदि के कई कारण हो सकते हैं पर चिकित्सको का स्पष्ट अभिमत है कि बहुत अधिक क्रोध करने वाला गभीर रूप से अस्वस्थता से ग्रस्त बन जाता है। डा. बनारसीदास जैन के नाम से उपस्थित श्रोताओ मे से कई परिचित होगे। उनके द्वारा लिखी

हुई एक पुस्तक का एक वार में अवलोकन कर रहा था। उन्होंने अपने लेखन में इस वात का सप्रमाण उल्लेख किया किया कि क्रोध प्रबल होने पर खून में एक प्रकार का विष पैदा हो जाता है जिससे मनुष्य को बहुत नुकसान उठाने पड़ते हैं। यही कारण है कि क्रोधी प्रायः दुर्बल रहते हैं। क्रोधी मनुष्य का खून इतना जहरीला विषपूर्ण बन जाता है कि उसके खून की एक बूंद खरगोश आदि जीवो के शरीर में इंजेक्शन द्वारा डालने से उसकी दशा बड़ी खराब हो जाती है।

एक वार एक क्रोधी व्यक्ति के खून को लेकर एक खरगोश के शरीर में परीक्षण के तौर पर इजेक्शन द्वारा प्रविष्ट किया गया। आप आश्चर्य करेंगे चौबीस मिनट के तुरन्त वाद वह पागल कुत्ते की तरह एक दूसरे को काटने के लिए दौडने लगा और कुछ हो देर पश्चात् छटपटा कर मर गया। अत्यधिक क्रोध में तिलमिलाती हुई एक मां जब अपने इकलौते पुत्र को स्तनपान करा रही थी, कुछ ही देर वाद वमन करते हुए वच्चा मृत्यु का ग्रास बन गया। अनुभवी डाक्टर ने निदान के बाद कहा कि क्रोध के कारण मां का दूध जहर के रूप मे परिवर्तित हो गया। एक बार मैंने लिखा था—

मैंने देखा है वरसने के बाद वादल ढीले हो जाते हैं।
हारने वाले के तर्क आखिर मे लचीले हो जाते हैं॥
गौरवर्ण वाले इन्सान भी प्रायः साथियो !
क्रोध के समय देखा है काले पीले हो जाते हैं॥

क्रोधी व्यक्ति का चेहरा क्रोध के समय पीला हो जाता है, शरीर सूख कर काटा हो जाता है। पाचन शक्ति बिगड जाती है, नाड़ी की गति तेज हो जाती है, दात पीसने लगता है, सांस फूलने लगती है, भौंहे और हाथ सिकुडने लगते हैं जवान खुश्क हो जाती है, वाणी लडखडा जाती है, खून में गरमी पैदा हो जाती है और असमय मे मौत का शिकार वन जाता है।

हारवर्ड मेडिकल कालेज के प्रोफेसर डा वाल्टर केनिन ने वताया कि मनुष्य के दोनो गुर्दो के ऊपर चने के वरावर दो छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमे से एक प्रकार का पदार्थ निकलता है, जिसे एड्रेनलिन कहते है। यह पदार्थ जव खून मे मिलकर जिगर मे पहुंचता है तो वहा जमे हुए ग्लाईकोजन को शक्कर मे वदल देता है। यह शक्कर खून मे मिलकर नाडियो द्वारा शरीर के तमाम हिस्सो मे पहुँच जाती है जो नसो और पुट्ठो में बहुत खिंचावट पैदा करती है।

इतना सुनने के पश्चात् मुझे लगता है कि आप क्रोध से जरुर वचने का प्रयास करेंगे एवं करना भी चाहिए। वैसे यहां के श्रोता जागरूक हैं अवश्य ही आप जागरूकता रखेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। जीवन विकास एवं हर तरह के तनावो से मुक्ति के लिए जितनी सजगता रहे, अच्छा है। जव भी क्रोध का प्रसंग वने आप एकदम उत्तेजित न वनें। पूर्ण विवेक रखकर दूरगामी परिणामो पर चिंतन करें। किसी कवि ने कहा है—

जब उठें उत्तेजनाएं मुह, अपना वंद कर दो।
कुछ रहो खामोश, मन पर एक दृष्टिपात कर दो ॥
और सोचो जो कि कहने और करने जा रहा हूँ।
शांतिमय इस जिंदगी मे भ्रांति तो नही ला रहा हूँ ॥
सभ्यता शालीनता का, अत तो नहीं हो रहा है।
व्यक्तित्व की मृदु भव्यता का सार तो नही खो रहा है ॥

अंत मे एक वार फिर मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि क्रोध का प्रसग कभी भी, कही भी किसी के द्वारा यदि वन जाए तो कुछ देर के लिए आप उस स्थान को तुरन्त छोड़ दें, कुछ देर के लिए मौन कर लें, किसी अन्य कार्य मे अपने आपको संलग्न कर दें, कुछ क्षणो के लिए श्वास को साधने का अभ्यास करें। अहं एवं आग्रह से परिपूर्ण मनोवृत्ति से मुक्त होने से भी क्रोध पर विजय की जा सकती है। सब हमारी इच्छा के अनुरूप ही चलें, यह सोचना भी क्रोध को बढाना है। निरपेक्ष एवं जितना हम सहज वनकर के चलेंगे उतनी ही हम सफलताएं हस्तगत कर सकेंगे। सबसे वडा त्याग, क्रोध का त्याग है। सवसे वड़ी मुक्ति, क्रोधादि कषायों से मुक्त होना है। आहार का, पदार्थों का, स्थान का त्याग करें, या न करें, कषाय त्याग पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। समय काफी हो चुका है, इस बारे मे फिर कभी अवसर हुआ तो चर्चा करने का मन है।

जल जाते हैं क्रोध से, धर्म, अर्थ शुभ काम।
वन जाते हैं क्रोध से, नरक योग्य परिणाम ॥
दवा दीजिए क्रोध को, कैसे होगा क्लेश।
सुनते रहिए शांति से, शांति सहित उपदेश ॥

O

४ | सबसे पहले इन्सान बनो

महानुभावो !

अभी-अभी आपके सामने हमारे साथी संत श्री प्रदीप मुनि जी म० मानवता पर प्रकाश डाल रहे थे। सचमुच, मानवता का जीवन में बहुत बड़ा महत्व है। यूं कहूं तो और अधिक उपयुक्त होगा कि मानवता रहित जीवन, नाम मात्र का जीवन है। हमारे जैन आगमों में एक महत्वपूर्ण गाथा है, जिसे आप लोगो ने कई बार सुना है—

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणि य जंतुणो।
माणुसत्त, सुई, सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥

अर्थात्, मनुष्यत्व, शास्त्रश्रवण, श्रद्धा और संयम में पराक्रम इन चार अंगों की सप्राप्ति जीवन मे कठिन है। इन चार अंगों में सर्वप्रथम जिस अंग का नाम आया है वह है मनुष्यत्व ! आप गहराई से यदि चिन्तन करेंगे तो यह तथ्य सम्यक् प्रकार से समझ में आ सकेगा कि मनुष्य जन्म नहीं, उससे अधिक दुर्लभ मनुष्यत्व है। आकृति से मनुष्य बनना अलग बात है एवं प्रकृति से मनुष्य बनना अलग बात है। महत्व इन्सान का नही, इन्सानियत का है। गरिमा आदमी की नहीं अपितु आदमियत की है। प्रशस्तियां मानव की नही इस संसार मे मानवता की हैं। मोल मिनख का नहीं, इस दुनियां में मिनखपणों का है। सचमुच, आज यदि कोई भी सकट है तो मानवता का है, मूल्यों का है। वैज्ञानिक विकास के इस युग में तथाकथित विकास के नाम पर यूं आज कहने को बहुत कुछ हो रहा है पर एक शायर के शब्दों में विचारणीय समस्या जो है, वह यह है—

सभी कुछ हो रहा है, इस तरक्की के जमाने में।
मगर यह क्या गजब है कि आदमी, इसान नहीं बनता ॥

मानव ने बड़े-बड़े बंगले, ऊंची-ऊंची बिल्डिगें, आलीशान अट्टालिकाएँ,

आकर्षक एवं सुविधा समृद्ध कोठियाँ, कारें, गाड़ियाँ खड़ी करलीं पर मानवता का विकास यदि जीवन में नही कर पाया तो सब कुछ व्यर्थ है, बेकार है, अर्थहीन है, एकदम निष्प्राण है। सत्ता, साधन सम्पन्नता पर व्यक्ति कितना ही इठला ले, यदि उसके पास मानवता का हृदय नही है तो मैं स्पष्ट रूप से कहना चाहूँगा कि उसका जीवन उस फूल के समान है जिसमें बाहरी सौन्दर्य तो है पर सौरभ नही है। सुमन की शोभा सौरभ से है, मोती की शोभा बाहरी चमक से नही अपितु पानी से है।

मानवता से जो जुडा हुआ है उसका हृदय संकुचित एवं सकीर्ण नहीं अपितु विशाल और उदार होता है। उसकी सौजन्यतापूर्ण दृष्टि मे तेरे मेरे जैसी तुच्छता होती है नही ही। किसी ने कहा भी तो है—

अयं निजः परोवेत्ति, गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

उदार हृदय वाले जो हैं उनके लिए सारा संसार ही परिवार के सदृश होता है। वह अपने लिए नही, दूसरो के लिए जीता है, मानव मात्र के लिए जीता है, न केवल मानव मात्र के लिए, अपितु प्राणी मात्र के लिए जीता है। उसकी दृष्टि 'मैं सबका और सभी मेरे की दृष्टि' होती है पर ऐसी नही कि हम हमारे एव तुम तुम्हारे। मानवता का हृदय जिसके पास है उसके चिन्तन के बारे मे हम इस तरह कह सकते हैं—

प्यार तो समझो केवल प्यार होता है।
यहां पर हर सवाल बेकार होता है॥
सवाल जवाब होते है सिर्फ गणित मे—
प्यार मे बस खुद का विस्तार होता है॥

और भी इस बारे में कहा जा सकता है—

जहाँ प्यार है वहां कोई भार नही होता।
जहाँ भार है वहां कोई प्यार नही होता॥
विस्तार ही विस्तार फैला है प्यार मे—
प्यार मे कभी इन्कार या स्वीकार नही होता॥

मानवता का प्यारपूर्ण हृदय जिसके पास है, वह 'आत्मवत् सर्व भूतेषु', अपनी आत्मा के समान प्राणी मात्र को समझता है। वह सभी के

सुख को अपना सुख एवं सभी के दु:ख को अपना दु:ख मानता है। जो केवल अपने स्वार्थों की संपूर्ति का लक्ष्य लेकर जीता है वह तो पशु जीवन है। हमें पशु नही, प्रभु वनना है। यदि प्रभु नही तो हम इन्सान तो जरूर बनें। राष्ट्र संत स्व० उपाध्याय श्री अमर मुनिजी ने एक बार लिखा था—

कुछ कहते हैं बनो फरिश्ता,
कुछ कहते भगवान वनो।
मैं कहता हूँ कुछ न बनो तुम,
सबसे पहले इन्सान बनो॥

श्रोताओ! इसे सुनकर आप सोचेंगे कि यह क्या लिखा उन्होंने। इन्सान तो हम उसी दिन वन गए जिस दिन आंखें खोली। पर यह बात आपको ध्यान हो तो मैंने वात के प्रारम्भ मे ही कह दी थी कि आकृति के इन्सान की नही, प्रकृति के इन्सान की जरूरत है। हमारे श्रमण सघ के युवाचार्य स्व० श्री मधुकर मुनिजी कई बार स्वामी रामतीर्थ की इस बात का अपने प्रवचन मे उल्लेख किया करते थे कि एम० ए० होना सरल है, पर MAN मेन अर्थात् आदमी वनना कठिन है।

उपस्थित भाइयो! आदमी वनने के लिए न पैसे की जरूरत है और न अध्ययन, अनुशीलन या इन डिग्रियो की आवश्यकता है। इसके लिए केवल प्रेम की जरूरत है, आत्मीयता की जरूरत है, सहानुभूति और सवेदनाओ की जरूरत है, जो दूसरो के दु ख को देखकर तुरन्त पिघल जाए, द्रवित हो जाए, उसके कष्टो के निदान के लिए तन से, मन से, धन से अपने आपको हर सम्भव न्योछावर कर दे उसे सुखी बनाने के लिए अपने क्षण-क्षण को समर्पित कर दे। एक बार मैंने कुछ पक्तियां सुनी थी—

अपने लिए जीये तो क्या जीये।
ऐ दिल! तू जी जमाने के लिए॥

अपने लिए जीना क्या, जीना है, हर एक जीता ही है। जीना तो दर असल वह है जो सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय हो। मेरे पूज्य गुरुदेव मेवाड केसरी श्री मोहनलाल जी महाराज कई वार फरमाया करते थे कि जो व्यक्ति दूसरो को सकटग्रस्त देखकर पिघलता नहीं वह तो मोल का पत्थर है। उसके सामने कोई गिरता है, पडता है, छटपटाता है, रोता है, चिल्लाता है, आहे भरता है, पर उसे कुछ भी असर नही होता है। महान तो वह हैं कि जो इन्सान, मानवता का

दिल लेकर हर एक को स्थान एवं सम्मान प्रदान करके उसके बुझते हुए अरमान को फिर से मुस्कान देकर प्रकाशमान कर देता है। एक उर्दू के शायर ने सुनिए कितनी अच्छी वात कही है—

मुवारक है जो दूसरो का अपने दिल में दर्द रखते हैं।
आंखों मे आंसू और लव पे आहे सर्द रखते हैं॥

संस्कृत के एक विद्वान मनीषी ने भी सफल जीवन की परिभाषा करते हुए लिखा है—

सदयं हृदय यस्य, वाचा सत्य विभूषिता।
कायः परहिते यस्य, सफल तस्य जीवनम्॥

वही जीवन सफल जीवन है जिसके हृदय मे दया है, अनुकम्पा है, करुणा है, वाणी मे सत्य का निवास है एवं काया से जो परहित निरत है। जोधपुर के भाई-बहनो से पूछना चाहता हूँ कि सम्यक्त्व के जो पांच लक्षण वताए हैं, कौन-कौन से हैं? (सभा में से किसी ने उत्तर दिया) सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था! बिल्कुल ठीक है, सम्यक्त्व से वही व्यक्ति जुड सकेगा जिसमें अनुकम्पा है। यह अनुकम्पा ही मानवता है। दया, दर असल मूल है।

मूल के विना याद रखिए न फल है न फूल है। दया से रहित हो जाना तो मैं यूं कहूँ कि जवर्दस्त भूल है। गोस्वामी तुलसीदास जी का यह दोहा आप कई वार वोलते हैं, वोलते कितना है, यह आपकी आप जानें—

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छांडिए, जव लगि घट मे प्राण॥

एक वात और कहूँ आप सत सतीवृन्द के सान्निध्य मे जब वन्दन के लिए पहुंचते हैं, तव वे भी तो आपको दया पालो ही तो कहते हैं। आप कहेगे वावजी! आज भी रविवार है, हममे से अनेको ने दया पाल रखी है, अच्छी वात है, दया भी पालना चाहिए, छह काया के आरम्भ आदि का परित्याग वड़ी वात है पर बुरा न मानें, माने तो भी कोई बात नहीं है, मैं आक्षेपात्मक अभिव्यक्ति नही कर रहा हूँ पर यथार्थ यह है कि आज की दया अधिकांश रूप से खाने-पीने तक या एक रूढि के निर्वाह मात्र तक रह गई है।

आप खा रहे हैं, खुश हो रहे हैं, और एक व्यक्ति आपका ही साथी

इन्सान भूख से परेशान होकर रो रहा है, दवा के अभाव में दम तोड़ रहा है, वस्त्र के अभाव में लज्जा नही ढक पा रहा है, कई बच्चे प्रतिभा सम्पन्न होने के बावजूद फीस के बिना पढ नही पा रहे हैं और दूसरी तरफ पान, पिक्चर और पेपर के लिए या यू कहूँ प्रदर्शन के लिए पैसे को पानी की तरह बहाया जा रहा है, सोचिए कहाँ है हमारी दया एव कहा है हमारी मानवता ? कई बार मैं बोला करता हूँ—

आज के इन्सान की भाषा अधूरी है ।
एक पल है प्यार तो दो पल गरूरी है ॥
पुस्तको के ज्ञान से अव कुछ नही होगा—
आदमी को आदमी पढ़ना जरूरी है ॥

निश्चित रूप से आदमी, आदमी को यदि पढना सीख लें तो आज चारो ओर जो समस्याएँ दिखाई दे रही हैं उनका मानवता से - सहज रूप से समाधान किया जा सकता है ।

माघ कवि एव उसकी धर्मपत्नी ने किस तरह से अभावो की चक्की में अहर्निश पिसते हुए एक आदमी के हृदय को पढकर मानवता की गौरव गरिमा की अभिवृद्धि की थी ।

एक बार माघ कवि के पास एक दीन हीन ब्राह्मण अपनी समस्या लेकर समुपस्थित हुआ और बोला—कविवर ! मेरे घर मे लड़की बड़ी हो गई है, उसकी शादी करनी है पर सुबह-शाम भर पेट खाने की भी समुचित व्यवस्था मेरे पास नही है, शादी करना तो मेरे लिए बड़ी समस्या की बात है ।

माघ कवि ने कहा—भाई ! तुम मेरे पास आए तो तुम्हारी पीडा को मैं महसूस करता हूँ पर क्या कहूँ मैं भी अभावों मे पल रहा हूँ तथापि तुम आए हो तो मै तुम्हारा हृदय से सम्मान करता हूँ, तुम्हें मैं विश्वास देता हूँ कि मैं निराश नहीं लौटने दूंगा पर मेरे से कल सुवह मिलना—मेरी जीवन सगिनी, धर्म पत्नी के हाथ मे उसके पीहर से आई हुई सोने की दो चूड़ियाँ हैं, जब वह सोई हुई होगी, मैं एक चूडी उसके हाथ से चुपचाप मेरे अपने ढग से निकालकर तुम्हें दे दूगा ।

ब्राह्मण, माघ कवि की यह बात सुनकर हर्ष विभोर हो उठा । दूसरे दिन सबेरे ठीक समय पर वह माघ कवि के यहाँ पहुँच गया । माघ कवि

चुपचाप उस कक्ष मे गए जहा उनकी पत्नी सो रही थी। उन्होने धीरे से एक चूडी उसके हाथ से निकाली और आगन्तुक याचक ब्राह्मण को देने के लिए जाने लगे और कवि माघ की पत्नी की आख खुल गई, सारी स्थिति को वह विदुषी पत्नी समझ गई और बड़े स्नेह और विनय के साथ उसने अपने हाथ से दूसरी चूडी को निकालकर कहा कि स्वामी लीजिए, यह दूसरी चूडी भी इन्हें दे दीजिए। एक चूडी से उसका काम नही होगा, दोनों चूड़ियों से उसकी सारी समस्या समाप्त हो जायगी।

यह था माघ कवि और उसकी धर्म पत्नी का मानवता से ओत-प्रोत विशाल हृदय। आज कही ऐसी स्थिति बन जाए तो घर मे बड़ी उलझन पैदा हो जाए। पर मुझे विश्वास है जोधपुर की ये बहनें कभी भी उलझन पैदा नही कर सकती, ये तो माघ कवि की पत्नी के समान विशाल का हृदय परिचय देंगी। कोई यह न समझ ले कि मुझे किसी सोने की चूड़ी या पैसे की जरूरत है इसलिए मैं यह कह रहा हूँ। सतों को इन सबसे क्या लेना देना है ? हमे किसी तरह की कोई अपेक्षा नही है। मैं तो मात्र आप से एक बात कहना चाहता हूँ कि आपको कुछ प्राप्त हुआ है तो उसका अपने सघ, समाज, जाति, राष्ट्र के लिए उपयोग करें, रचनात्मक प्रवृत्तियों मे अर्थ का यदि उपयोग होता है तो ही कुछ अर्थ का अर्थ है अन्यथा तो अनर्थ है। परम पूज्य आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषि जी म० के श्रीमुख से एक बार मैंने सुना था—

देह मिले का एह फल, देह कहे कुछ देह।
देह खेह हो जायगी, फिर कौन कहेगा देह॥

यह यथार्थ है कि कुए मे से जितना पानी निकालते हैं सुबह कुआ फिर भर जाता है। नाखून जरूरत से ज्यादा बढ जाते हैं तो उन्हे काटना ही चाहिए।

सम्पत्ति, साधन यदि आपके पास है तो उसका समुचित उपयोग होना चाहिए। आपके जोधपुर के नरेश श्री जसवन्तसिहजी का एक दोहा बडा प्रसिद्ध है—

खाया सो ही खरचिया, दिया सो हा दत्त।
जसवन्त धरण पोढावतां, माल पराए हत्थ॥

एक बार मैंने लिखा था—

ज्ञान और धन से 'कमल', करिए पर उपकार।
मुरझा जाता शाम को, फूलो का संसार॥

काफी कुछ कह दिया है, घडी में साढे दस बज चुके हैं। जिन तपस्वी भाई-बहिनों को प्रत्याख्यान आदि करते हैं वे करलें, फिर हमारे संघ मन्त्री हरकराजजी सा० आपको पर्युषण पर्व से सम्बन्धित कार्यक्रमों के बारे में जो भी जानकारी देनी है, दे देंगे। अन्त मे फिर आप सब से मानवता के बारे में कह देता हूँ—

जात पात से बडा धर्म है
धर्म ध्यान से बडा कर्म है
कर्म काण्ड से बड़ा मर्म है
और सभी से बड़ा यहा पर धरती का इन्सान है।
और अगर यह प्यार करे तो धरती स्वर्ग समान है॥

५ | भक्ति, भगवान बनाती है

महानुभावो !

अध्यात्म जीवन में भक्ति का विशेष महत्व है। भक्ति जो अनुरक्ति को एक नई संज्ञा देती है, आत्मा से जोड़ती है, शरीर से परे ले जाती है और असार ससार की संपूर्ण निस्सारता को स्पष्ट करती है। जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी म ने भक्ति के महत्व को प्रतिपादित करते हुए एक बार कहा था—

भक्ति भवताप मिटाती है, भक्ति भव सिंधु तिराती है।
भगवान भक्त में भेद नही, भक्ति भगवान बनाती है ॥

भक्ति से मन को शांति प्राप्त होती है। मन एकाग्रचित्त होकर उस तत्व से जुडता है जहां से मुक्ति की यात्रा प्रारम्भ होती है। मुक्ति जो किसी भी जीव की, किसी भी आत्मा की अन्तिम चाह है, अन्तिम नियति है। उपलब्धि की प्राप्ति की जो धारा बहने लगती है वह एक ऐसा प्रवाह होती है जिसमें तिरकर जीव भव से पार हो जाता है। यह धारा कभी किसी को डुबोती नही, तारती ही है।

भक्ति मन को सतत जागृति सौंपती है। मन को विभ्रमों से निकाल कर सजगता सौंपती है। जो मन जागरूक है, सचेत है उसे कोई विभ्रम, कोई छल, कोई कपट भरमा नही सकता। भक्ति मन मे आलोक का प्रसार करती है, मन मे एक अनूठी दिव्यता छा जाती है। उस दिव्य आलोक मे जो व्यक्ति यात्रा प्रारभ करता है, वह मार्ग के सही स्वरूप को पा जाता है।

भक्ति को लोग पूजा के लिए प्रयुक्त करते हैं पर आवश्यक नहीं कि भक्ति किसी कर्मकाण्ड से जुडी हुई हो। कई ऐसे मंत्र तथा स्तोत्र होते हैं जो मन ही मन भजकर भी आत्म शान्ति के लिए उपयोग मे लाए जा सकते हैं।

उपस्थित सभी श्रद्धालुओं से प्रस्तुत चर्चा के दौरान मैं विशेष रूप से एक बात कहना चाहता हूँ कि भक्ति समस्त मानसिक परेशानियों से मुक्ति दिलाती है। मन एक ऐसी अनुभूति मे रमने लगता है कि किसी भी प्रकार की उलझन पास नही रहती और जहाँ उलझन नहो, वहा कोई बाधा नही। जहां बाधा नही, वहां सहजता है और जहा सहजता है वहा गति है, वहां मुक्ति है। सामान्यतः हमे मन को शान्त रखने के लिए प्रयास करने होते हैं पर भक्ति एक ऐसी विधा है, जिसके अपनाते ही मन स्वत: प्रशाति की ओर बढने लगता है।

मानतुंगाचार्य के जीवन मे शारीरिक एव मानसिक दोनो दृष्टियो से आकस्मिक रूप से कितने जबर्दस्त सकट के मेघ उमड कर छा गए थे, पर प्रथम तीर्थंकर परम मंगलमय परमात्मा भगवान आदिनाथ की भक्ति मे ज्यो ही उन्होने अपने आपको सलग्न किया, देखते ही देखते तन एव मन दोनो तरह से मानतुगाचार्य ने शान्ति एव सुख का अहसास कर लिया। मीरा ने इसी भक्ति से जुडकर हर बाधा को भूमिसात कर दिखाया। इसी भक्ति से सुदर्शन की शूली सिहासन के रूप मे परिवर्तित हुई, द्रौपदी के चीर की अभिवृद्धि के पीछे द्रौपदी की भक्ति थी। सुभद्रा द्वारा चपा के द्वार का उद्घाटन एवं श्रीपाल की भयकर रोग से मुक्ति पर भक्ति का चमत्कार ही तो था। आज भी सब कुछ होता है, पर दृढ निष्ठा, समर्पण एव आत्मीय अनुरक्ति की जरूरत है। प्रभुभक्ति का बल, सबसे बड़ा सबल है। कहा भी तो है —

कलियुग मे है नाम आधारा।
सुमरि सुमरि उतरे भव पारा॥

जिसके मन मन्दिर मे प्रभु भक्ति की ज्योति प्रज्वलित है, वह कभी भी दु:खो के अंधकार में भटक नही सकता। मुक्ति की प्राप्ति के कई साधन हैं पर अधिकार के साथ एक बात कही जा सकती है कि भक्ति उन सभी साधनो मे सहज, सुगम एव सभी के लिए श्रेष्ठ साधन है। प्रतिदिन के अनिवार्य कार्यों की सूची आपके पास डायरी मे प्रायः रहती ही हैं और उसी के अनुरूप आप दिन भर के आवश्यक कार्यों को सपादित करते हैं पर मेरा आदेश नहो, एक छोटा सा आग्रह है कि उस सूची मे एक अनिवार्य कार्य प्रभु भक्ति का भी मानसिक, शारीरिक एव आध्यात्मिक शांति की संप्राप्ति को यदि तमन्ना है तो अवश्य जोड़ दें —

चपातियाँ सेकने के लिए तवे का तपना जरूरी है।
बीज को अपने विकास के लिए धरती मे खपना जरूरी है।।
जिसके लिए जो जरूरी है वह जरूरी है ही पर।
आत्म विकास के लिए भगवान को जपना भी जरूरी है।।

ऐसा यदि होता है तो ठीक है अन्यथा फिर क्या है ? भक्तिशून्य जीवन के लिए कहा है—

भक्ति हीन गुण सब गुण ऐसे।
बिना लवण के व्यजन जैसे।।

किसी शायर ने भी इस सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट किए हैं—

गुल वही बेकार है जिस गुल मे बू नही।
दिल वही बेकार है, जिस दिल मे तू नही।।

जिस मन मे प्रभु को बिठा लिया जाता है, वह बड़ी सहजता से ससार सागर को देखते-देखते पार कर लेता है। तेईसवें तीर्थंकर चितामणि प्रभु पारसनाथ, जिनके नामस्मरण का अद्भुत चमत्कार है, कल्याण मंदिर स्तोत्र के रचयिता आचार्य प्रवर ने बड़े ही भावपूर्ण ढग से अपने भावो को व्यक्त किया है—

त्व तारको जिन ! कथ भविना त एव
त्वामुद् वहति हृदयन यदुत्तरन्त ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेषनून—
मन्तर्गन्तस्य मरुतः सः किलानुभावः ।।

जोधपुर के श्रद्धालुओ ! ध्यान देना, इस श्लोक के भावो पर ! आचार्य ने भक्ति के महत्व पर बहुत ही मननीय भाव प्रकट किए हैं। हे जिनेश्वर देव ! आप भव्य जीवो को ससार से पार उतारने वाले तारक कैसे बन सकते हैं ? क्योकि भव्य जीव जब ससार सागर से पार उतरते हैं तब वही आपको अपने हृदय मे धारण करते है, आप उनको कहा धारण करते हैं ? हा, ठीक है—समझ मे आ गया। अदर मे पवन से भरी हुई मशक जब जल में तैरती है तब वह अन्दर मे स्थित पवन के प्रभाव से ही तो तैरती है, स्वय कहाँ तैरती है ?

हां तो मैं आपको बता रहा था कि भक्ति व्यक्ति को अपनी आत्मा के ठीक सामने ला देती है, आत्मा से सवाद की स्थिति मे आ जाने पर

व्यक्ति की तल्लीनता, एकाग्रता में अभूतपूर्व वृद्धि हो जाती है। भक्ति व्यक्तिगत हो अथवा सामूहिक दानो ही स्थिति मे उसका अभीष्ट प्रभाव पड़ता है। एक व्यक्ति की भक्ति भो उतनो हो प्रभावशाल है, जितनी कि समूह की।

भक्ति एक समपंण भाव है। इसमे हार अथवा जोत का कोई प्रश्न नही रहता। या यूं कहे कि इसमे हार को भी विनम्रता से स्वीकार कर लेने की तत्परता रहती है। अपने इष्ट अथवा अपने आत्मा से पराभूत होकर भी व्यक्ति एक जीत का ही अनुभव करता है।

भक्ति एक ऐसी सहमति है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति स्वय को अपने सभी स्वार्थ, प्रलोभनो से मुक्त रखते हुए पूर्ण समर्पण के लिए प्रस्तुत होता है। जैसे कहा है—

> **अन्यथा शरण नास्ति, त्वमेव शरणं मम्।**
> **तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष-रक्ष जिनेश्वरः।।**

भक्ति वह प्रेम है, जिसमे वासना नही है। जिस प्रेम मे वासना नही, वह सपूर्णत पवित्र भाव है। पवित्रता एक ऐसा तत्व है जो उठान की सारी फिसलनो को निरस्त करता है। भक्ति वह सकेत है जो भूले भटकों को सही दिशा ज्ञान देता है जो भौतिक परिवेश से आत्मिक परिधि मे प्रवेश करने की युक्ति देता है। आज से आयबिल ओली का मंगल प्रारंभ होने जा रहा है। तप करने वालो से एव जो तप नही कर रहे हैं उनसे भी मेरा सदेश है कि इन दिनो में प्रभु भक्ति, महामन्त्र नवकार आदि के जप का विशेष ध्यान रखें।

□

६ | स्वाध्याय, एक अन्तरंग तप है

महानुभावो !

आज आपके सामने स्वाध्याय के सम्बन्ध में कुछ विचार व्यक्त करने का मन हो रहा है। परम मंगलमय परमात्मा भगवान वीतराग महावीर के श्री चरणो में आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व पावापुरी के अन्तिम समवसरण में जिज्ञासु द्वारा एक प्रश्न पूछा गया—

भन्ते ! स्वाध्याय से जीव को क्या प्राप्त होता है ? प्रभु ने समाधान प्रकट करते हुए फरमाया—स्वाध्याय से जीव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है। इस सम्बन्ध मे वहुत ही सुन्दर ढंग से कहा गया है—

ज्ञान विना चारित्र का, माना गया अभाव।
जाना जा सकता नही, अपना आत्म स्वभाव ॥
स्वाध्याय मे रत पुरुष, पाया करता ज्ञान।
आविष्कार नए-नए जो देता विज्ञान ॥

इस सम्वन्ध मे और भी लिखा है—

दुःख अगर ससार मे, वड़ा दु.ख अज्ञान।
विना ज्ञान, अज्ञान का, कैसे हो अवसान ॥
नव तत्वो के ज्ञान को, माना सम्यक् ज्ञान।
नय से और प्रमाण से, करो 'कमल' पहचान ॥

निश्चित रूप से स्वाध्याय का महत्व निर्विवाद है। स्वाध्याय के अभाव में इन्द्रिय निग्रह, मनोनुशासन एव चेतना का ऊर्ध्वारोहण असम्भव है। स्वाध्याय के सिंधु मे डुवकी लगाए विना सुखो के मौक्तिक प्राप्त करना कठिन है। तभी तो कहा है—

अपने दिल मे डूबकर पा जा सुरागे जिन्दगी।
तू अगर मेरा न वनता है न वन, अपना तो वन ॥

ये पंक्तियां तो आपको याद ही हैं—

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ ।
मैं बोरी ऐसी भई, गई किनारे बैठ ॥

तो सचमुच स्वाध्याय जीवन का वह अध्याय है जो ज्ञान को प्रदीप्त करता है, प्रतिभा को विकसित करता है और संस्कारों का रोपण करता है। स्वाध्याय वह सविधा है जो अज्ञान के अन्धकार को विनष्ट करता है, मनुष्य को कुण्ठा व हीनत्व भाव कुसंस्कारों से परे करता है। स्वाध्याय जीवन में समन्वय तथा सौहार्द की भावना जाग्रत करता है। स्वाध्याय का महत्व यही है कि वह जीवन को महत्वशाली बनाता है। स्वाध्याय को जीवन का अभिन्न अंग बनाना श्रेयस है।

स्वाध्याय अतल गहराइयो तक ले जाता है। स्वाध्याय विवादो से मुक्त करता है। स्वाध्याय बाह्य व अन्तर् मे तादात्म्य स्थापित करता है। आत्मिक क्षमता जगाता है। स्वाध्याय व्यक्तित्व का रूपान्तर कर देता हैं। स्वाध्याय जागृति सम्भव करता है। स्वाध्याय को हमारे सन्तों ने इसीलिए धर्म क्रिया मे जोडा है कि वह मानव जीवन का एक अनिवार्य अग बनकर उसे ऊर्ध्व दिशा की ओर निरन्तर बढाता रहे। स्वाध्याय एक सुसंयोजित रूप से ध्यान सामायिक से जोडकर महत्वपूर्ण स्वरूप में ढाल दिया गया है।

यूं धर्म क्रिया से जुडने से स्वाध्याय मे गन्दे साहित्य, गन्दे विचारों से बचा जाता है। क्योकि इसमें मुख्यत: शास्त्रो का स्वाध्याय किया जाता है जो साधको की अपूर्व साधना का निचोड होता है। ऐसे स्वाध्याय से पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं। विशुद्ध आचरण जीवन मे स्थान पाता है। सत्-साहित्य की यह रुझान भी पुण्य से प्रकट होती है। ऐसे स्वाध्याय से समत्व की स्थापिनि होनो है। स्वाध्याय करते-करते ही साधक शिक्षक की श्रेणी मे आ जाता है। वह प्राप्त ज्ञान का प्रसार करने मे सक्षम हो जाता है।

स्वाध्याय मनुष्य की चिन्तन शक्ति को प्रखर करता है। सतत पढने से ज्ञान का प्रदीप भी अखण्ड रूप से प्रज्वलित रहता है। अपने नित्यक्रम मे स्वाध्याय को स्थान देने से परिपूर्ण चैतन्य प्राप्त होता है। स्वाध्याय के लिए साहित्य का चयन अपने लिए उपयोगी तथा बोधगम्य ग्रन्थो मे से किया जाता है। किन्तु अनवरत रूप से अच्छे साहित्य से संलग्न होने पर विचार का सार भी उठ जाता है तथा भाषा की समझ भी व्यापक होने लगती है। दुरूह से दुरूह विषय भी स्वाध्याय से सहज सरल हो जाता है।

स्त्राध्याय समझ के वे द्वार खोल देता है जो अज्ञान के कारण बन्द पडे रहते हैं। स्वाध्याय में वहुत अधिक व्यय भी नही करना पडता है। जो खरीद कर पढने मे सक्षम नही होते हैं वे पुस्तकालयों से पुस्तके प्राप्त कर अपने ज्ञान मे अपार अभिवृद्धि कर लेते हैं। ज्ञान की वृद्धि होने पर व्यक्ति अनेक रूप से लाभ रूप से लाभान्वित होता है। वह जीवन व्यवहार में भी अच्छे बुरे की ठीक-ठीक परख करता है।

दानो में सबसे श्रेष्ठ दान है ज्ञान दान। ज्ञान की ज्योति जगाकर किसी भी अंधेरे मन मे उजास का आलोक फैलाया जा सकता है। एवं स्वाध्यायी ही यह दान देने में सक्षम होता है। स्वाध्याय एक प्रकार की साधना है इसमे पठन अध्ययन, मनन सब अत्यन्त मनोयोग से सम्पन्न किया जाता है। मनोयोग से किए गए कार्य में सफलता अवश्य प्राप्त होती है। अर्थात् अप्रत्यक्ष रूप से स्वाध्याय सफलता के सोपान की ओर अग्रसर करता है। स्वाध्याय की वृति अन्य प्रकार की प्रवृत्तियों से सहज हो विमुख करती है।

स्वाध्याय केवल पुस्तक पठन ही नही है, इसमे चिन्तन भी जुडा है। सतत चिन्तन, मनन और निरीक्षण कर अंतर् में जागरण का स्वर उभरता है। तत्वपूर्ण उद्‌बोधन का श्रवण भी स्वाध्याय के अन्तर्गत आता है। स्वाध्याय प्रमाद को परे करने का हेतु है। सत्संग भी स्वाध्याय के ही अन्तर्गत आता है। स्वाध्याय से ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान से आत्म-बोध संभव हो जाता है। इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का विस्तार होता है। वह समाज की ओर इकाइयो से जुडता है। स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान अपूर्व होता है। उससे संयम भी सधता है। स्वाध्याय से यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है। स्वाध्याय व्यक्ति को उदार व सहिष्णु बनाता है।

स्वाध्याय व्यक्ति की एकांत दृष्टि को अनेकान्त की ओर मोड़ता है। वह व्यक्ति को किसी भी तथ्य के चिन्तन में हर पहलू से सोचने की स्थिति देता है। इसी के द्वारा व्यक्ति यह जान पाता है कि तथ्य वही नहीं है जो वह देख रहा है, जान रहा है, वरन् तथ्य के और भी अनेक सत्य है। उन सभी सत्यो का निचोड ही विशुद्ध सत्य है। इस तरह स्वाध्याय वह प्रक्रिया है जिसमे विकार युक्त विचार 'फिल्टर' होकर विशुद्ध रूप मे प्राप्त होते हैं। स्वाध्याय दूध का दूध और पानी का पानी कर देता है।

स्वाध्याय के पूर्व व्यक्ति महिम रोशनी में दिख पड़ते विम्ब ही देख

पाता है। किन्तु स्वाध्याय के द्वारा वह अनन्य आलोक से जुड जाता है। स्वाध्याय अस्पष्ट प्रकाश धारा को दिव्य ज्योति मे वद न देता है। ऐसी दिव्य ज्योति जो वातावरण मे एक ऐसी महक भर देती है कि सारे कलुष, सारी दुर्गन्ध स्वतः ही समाप्त हो जाती है। स्वाध्याय से सारे विचार प्रदूषण निरस्त हो जाते हैं। एक ऐसी विचार परम्परा पनपती है जो समस्त विवादो को व्यर्थ कर देती है। स्वाध्याय के अन्तर्गत समाधान ही समाधान है।

स्वाध्याय को अन्तरग तपो मे परिगणित किया जाता है। स्वाध्याय का अर्थ है ऐसे विषय का चिन्तन जो सब विषयो व कार्यो की जड मे है। उसी पर स्थित हैं सारे विचार, सारे चिन्तन। स्वाध्याय के पाँच अग है—
१ वाचना, सूत्र को अर्थ सहित पढ़ना २ पृच्छा, वाचना ग्रहण करते समय सशय उपजे तो जिज्ञासा करना ३ परिवर्तना, पढे हुए को स्मृति मे रखने के लिए पुनः चढना, ४ अनुप्रेक्षा, सीखे हुए सूत्र का विस्मरण न हो अत वार-बार चिन्तन मनन करना, ५ उपदेश, अभ्यास पुष्ट हो जाने पर अन्य जीवो को शास्त्रो की जानकारी देना। ज्ञान का प्रसार करना।

किसी कवि की ये गीत पक्तियां कितनी प्रेरक हैं—

स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो।
जीवन की असली आय करो
स्वाध्याय आत्म आलोचन है।
सारे कष्टो का मोचन है॥
उठने का जरा उपाय करो

❀

७ आज, महावीर को गौण-सा कर दिया है—

महानुभावो !

यह एक परिकल्पना है कि शासन मे सह-अस्तित्व, संगठन, सौहार्द एव मैत्री का समावेश होगा, वह सम्प्रदायवाद एवं मेरे-तेरे मे घेरे से मुक्त होगा। दूर तक ऐसे आसार कही भी नजर नही आते। वैपरीत्य, वैषम्य एवं तोड-फोड का चक्र इतना गति पा चुका है कि उसे रोकने वाला भी उसकी चपेट मे आ जावे, ऐसी पूरी सम्भावना है।

सम्प्रदायवाद सर्वत्र प्रशसित है। उसे पर्याप्त प्रश्रय है, समुचित संरक्षण है, और विकास के लिए अवसर है। नित्य प्रति वह और अधिक विस्तार पा रहा है। वह रग-रग मे समाता जा रहा है। तो क्या सारे प्रयास ताक मे रख देने चाहिए ? तो क्या इस सम्भावनाशून्य जगत मे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना चाहिए ? समय और स्थितियाँ तो यही कहती हैं। लेकिन मैं कहता हूँ कि जो प्रवाह मे विपरीत चले, क्रान्ति उसी के हाथ सम्भव है। कई ऐसे क्रान्तिकारी हुए हैं जिनके शब्दकोप में असम्भव शब्द अस्तित्व मे ही नही था।

अब प्रश्न उठता है कि एक सर्वव्यापक बीमारी का निदान कैसे हो ? कोई भी रुग्णता, कोई भी रोग, यदि उसे पूरी तरह खत्म करना है तो पहले उसका समूचा परीक्षण जरूरी है। परीक्षण के प्रश्न हैं—सम्प्रदायवाद कहाँ पनपता है ? तोड-फोड, राग-द्वेष, मेरा-तेरा, आरोप-प्रत्यारोप क्यों उभरते हैं ? सम्प्रदायवाद की जडे कहां तक, किस प्रकार कितनी पहुची हैं ? इन सब बातो पर विचार चिन्तन करेंगे तो हम पायेंगे—नग्न सत्य यह है कि महावीर के उपासक वर्ग ने आज महावीर को एकदम गौण-सा कर दिया है। मैं बहुत बार कहा करता हूँ कि महावीर को याद करना केवल अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए आधार मात्र रह गया है। आए दिन देखते हैं चर्चाओ, प्रस्तावो, गोष्ठियो, सभाओ के बीच प्रायः एकता, मैत्री, सह-

अस्तित्व, संगठन, सौहार्द आदि की बातें होती हैं। कहा जरूर जाता है, हम सब महावीर के हैं और महावीर सभी के हैं पर सामने जो कुछ दिखाई दे रहा है वह एकदम भिन्न है, अलग है, और है। हम सबको आज जितना महावीर और महावीर के सिद्धान्तो का विचार नही है उतनी चिन्ता—चिन्तन अपने-अपने घेरो का है। अपने-अपने स्वार्थो का है। अपने-अपने राग का है, अपनी-अपनी दृष्टि, अपनी-अपनी धारणा एवं मान्यता का है। मैंने अपनी इन आँखो से कई बार, कई स्थानो पर देखा है कि महावीर और महावीर के अनेकान्त की बात गौरव से करने वाले व्यक्ति अपने सम्प्रदाय से अलग सम्प्रदाय के साधु-साध्वियों को देखने के साथ ही आखे चकरा सी जाती हैं। ये हमारे सन्त नही है, ये तो उनके हैं। हम इन्हे कैसे मानें ? कैसे वन्दन, नमन करे ? क्या हमारी साधना विराधना नही हो जायेगी ? श्रावक समुदाय मे तो यह विष समाया हुआ है ही पर महावीर के पथ पर बढने वाले निर्ग्रन्थ श्रमण-श्रमणियो को (भले ही वह मूर्तिपूजक हो, स्थानकवासी, तेरापथी या दिगम्बर हो) यह कहते हुए देखते हैं कि उन्हे छोडो, इन्हे धारो, वो ठीक नही है, वो ठीक है। वो ठीक है तो बडा विचार आता है, यह सब देखते हुए कि कहां उतकर पाए हैं हम महावीर को अपने मन मे। यूं कहते हुए अतिशयोक्ति नही होगी कि महावीर को ही आज मन से उतार दिया है। कोई चाहे माने या न माने पर यह एक जीवन्त तथ्य है कि औदार्य, सह-अस्तित्व, मैत्री, करुणा, प्रेम, सेवा, सहानुभूति, सहयोग के अभाव मे कोई भी देश, धर्म, समाज, सघ की बात तो दूर रही, सम्यक् जीवन को जीने की कल्पना भी नही कर सकता।

यूं आज समय-समय पर कई आयोजन भी प्राय आयोजको के द्वारा आयोजित होते हैं इस लक्ष्य को लेकर कि महावीर मे आस्था रखने वाले एक दूसरे के नजदीक आएँ, साथ बैठें, साथ बोलें, एक दूसरे को समझें, प्रेम भावनाओ की अभिवृद्धि हो। मैं मानता हूँ कि ऐसी प्रवृत्तिया/आयोजन अपने आप मे उपादेय है और मैं स्वयं साम्प्रदायिक सौहार्द का हामी होने के नाते कई बार सम्मिलित हुआ हूँ, पर अधिकतम रूप से मैंने जो कुछ अब तक पाया, उस आधार पर बडे साहस के साथ कह सकता हूँ कि इन सब मे भी औपचारिकताएं पलती हैं। महावीर को गौण कर दिया जाता है, अपने आपको, मतलब मूर्तिपूजक मूर्ति को, स्थानकवासी स्थानक को, तेरापथी और दिगम्बर अपने स्वय को उभारने की चिन्ता मे पुरजोर सक्रिय हो उठते हैं। ऐसी स्थिति में क्या तुक है, मचीय शोर शराबे का ? मैं बहुत बार कहा करता हूँ—आज मच की नही, मन की एकता अपेक्षित है।

महावीर मे आस्था रखने वाले घटक अपनी-अपनी व्यवस्था के अन्तर्गत चले चलना ही चाहिए, इसमे किसी को कोई आपत्ति नही पर कम से कम जो एकरूपता की मोटी बातें हैं उनमे एकनिष्ठ बन जायें। महावीर को लेकर आखिर किसको क्या विवाद है ? वे तो हम सभी के हैं।

भगवान महावीर एक दिव्य वृक्ष के एक दृढ तने के समान हैं। जिनका आधार पाकर अनेक शाखाएं-प्रशाखाएँ फूटी हैं। आधार रूप में भगवान महावीर हैं। उनका दृढ आधार हमे मिला है। किन्तु वृक्ष को हम अपनी समग्रता मे नही देखते हैं। प्रत्येक को यह भ्रम है कि हमारा अस्तित्व ही सर्वोपरि तथा सर्वरूपेण श्रेष्ठ है। यहा तक तो फिर भी ठीक है पर यदि अपनी श्रेष्ठत को ही महत्व देते रहे और अन्यो को हम कुछ नही समझें, विपरीतताये उभारे तो यह हमारी धृष्टता है, कुटिलता है।

माना कि वृक्ष का कोई भाग पूर्वाभिमुख है, कोई भाग पश्चिमाभिमुख है तो कोई उत्तर की ओर मुह करके खड़ा है और कोई दक्षिण से जुडा हुआ है। कोई किसी समय धूप झेलता है कोई किसी और समय। कोई हवा के पुरवाई झकोरो से हिलोरित है तो कोई पछुवा हवाओ से सम्पोषित है। कोई उत्तर से तो कोई दक्षिण से वायु का श्वसन करता है। परन्तु इससे क्या फर्क पडता है ? हैं तो यह सब एक ही पेड की शाखाओ की अनुभूतियां। इतने से पार्थक्य से यदि हम एक दूसरे के प्रति स्थित पारस्परिकता को खो देवें तो यह तो हमारी एक कुचेष्टा ही कही जा सकती है।

हम बंटे हुए हैं मूर्तिपूजक, स्थानकवासी, तेरापथी व दिगम्बर आम्नायो मे। इनके भी और कई भेद व प्रभेद हैं। अपने-अपने स्वरूप के प्रति इनमे से सब चिंतित व समर्पित हैं। समर्पण तो है पर वह मानव मात्र के प्रति नही, अपनी-अपनी सकुचितताओ के प्रति है। हम निःसकोच अपने अस्तित्व को दर्शाने मे जुड़े हुए हैं। एक ही पेड़ की कोई शाखा कहे कि मेरा तो अस्तित्व पृथक है, मुझे अन्य शाखाओ से क्या लेना तो बात जरा गले नहीं उतरती।

हम पृथक हैं, इतना ही काफी नहीं है। हम अपने ही द्वारा स्थापित इन पृथकताओ मे खोज रहे है वे सूत्र, जिनके बल पर अन्य को नीचा दिखलाया जा सके। एक डाल सोचे कि मैं ही ऊँची रहूँ—सबसे ऊँची तो अन्य डालो का क्या हाल हो सकता है ? ऊंची—सबसे ऊँची रहने की यह ललक एक दिन सभी को धराशायी कर देती है। पृथकता और बात है

पर उस पृथकता मे आपसदारी का त्याग हमारी असहिष्णुता, हमारा अनुदार मन ही तो दर्शाता है। हम प्रभु महावीर का, जैन दर्शन का समुचित आदर करते हैं। पर एक दूसरे के स्वार्थों के टकरा जाने पर उन्ही का अनादर भी कर देते हैं।

प्रत्येक अपना ही सिक्का जमाने के लिए प्रयत्नशील है। सबको प्रिय है अपना-अपना गुरुडम, अपना ही जजाल, अपना ही आल-जाल। अपने अलावा किसी को कुछ सूझता ही नही। आज यदि कुछ पुष्ट हो रहा है तो वह है सम्प्रदायवाद। जो स्थितियों, परम्पराओ का हार्द नही समझता वही खुलकर आक्षेप करता है। आक्षेपो की नोक झोंक मे वह यह भी भूल जाता है कि वे आक्षेप उस पर भी लागू होते हैं।

एक मुह पत्ती पर अगुली उठाता है तो दूसरा उसे प्रश्रय देता है। अपने-अपने तर्क सभी देते हैं। यह तय करना मुश्किल होता है कि क्या सही है ? किस अपेक्षा से किसे सही या झूठ माना जाता है ? अनेकान्त की स्पष्ट अवहेलना है। आखिर कोई अपनी-अपनी समाचारी निवाहे क्या कष्ट है ? क्यो कहा जाता है एक दूसरे को झूठा ? एक ही मा के तो वे सभी सपूत है। माँ का वात्सल्य सभी को समान रूप से प्राप्त है, फिर यह भेद क्यो कर है।

सबकी दिली इच्छा है कि सब मे मेल-जोल हो व एकत्व हो। पर सब ही उस भावना की अवहेलना करने मे भी सलग्न हो गए हैं। यह एक बडी त्रुटिपूर्ण व्यवस्था हो गई है कि सब अपने अस्तित्व की सोचते हैं, उसके लिए अन्य को कुछ भी महत्व नही देते, उसे कुचलने की सोचते रहते हैं। परन्तु यह एक निर्विवाद सत्य है कि अन्य की विनष्टि सोचना बडी मूर्खता है। यह ठीक उसी प्रकार है कि औरो के लिए गड्ढा खोद खुद ही गिर पडना। सबकी सोच अलग-अलग है तो इससे क्या फर्क है ? इससे महावीर के सिद्धान्तो का स्वरूप तो नही बदलता। महावीर तो एक ही हैं। उनका कथन एक है, उसका दर्शन एक है। फिर ये सब व्यर्थ के प्रपंच क्यो हैं ? कहां से आये ये विभेद ? एक ही दीवाल पर अनेको छिद्र से प्रकाश आता है। अलग-अलग छिद्र उसे अलग-अलग आकार मे ढालते हैं, प्रसार देते हैं। पर क्या इससे यह सिद्ध हो जाता है कि सूरज भी अनेक हैं।

यह बडी विडम्बनापूर्ण स्थिति है, यह निरर्थक है। न जाने हम इसे क्यो दवा देते हैं ? क्यो आपने आप को सुलगाते हैं ? क्यो रचते हैं अलगाव ? लगाव की बातें हम क्यो विसरा बैठे हैं ? क्यों सभी को स्वार्थ प्रिय

है, क्यों सभी ने संकुचितता को धारण कर लिया है ? माना कि हम में वह दृढता नहीं जो वीर प्रभु में थी। पर तने की दृढता ही तो यह अवसर देती है कि डाल-पत्ते झूमकर नाचे। हमें लोच या लचीलापन इसीलिए तो नही मिला है कि हम अलग-थलग होवें। अलग-अलग दिशा ग्रहण करके भी मूल में तो हम एक हैं।

हम भारतीयों के लिये यह प्रख्यात है कि जितने धर्म हैं उतने ही हमारे देव हैं। इसका सीधा मतलब यह है कि हम पूरी तौर पर अघुलन-शीलता लिये हैं। परस्पर हम मिलते नही। तथ्य है कि हम समर्पण भाव से जरा भी जुडे नही हैं। हमारा तो यही प्रयत्न रहता है कि हमारे अलावा सब हमारे सामने झुकें। हम हैं श्रेष्ठतम, हम हैं सर्वेसर्वा। सत्य यह है कि हम अपने अलावा किसी को कुछ गिनते नही हैं। यह हमे निरा भ्रम रहता है कि हम ही श्रेष्ठ रूप से जानते हैं। जो हमने जाना है वही सत्य है, तथ्य है शेष सारा ढकोसला है।

खैर, इन आक्षेपो से कुछ भी लाभ नही। तथ्य रूप मे हमें महावीर के सिद्धान्तो के अनुरूप ढलना है, परस्पर उदार भाव, सहिष्णुता को अपनाना है तथा अपनत्व को विस्तार देना है। पेड का एक पत्ता भी थिरके तो उसे यही समझना होगा कि उसका उल्लास पूरे पेड का उल्लास है। अपने ही पैरो पर कुल्हाड़ी मारने से कुछ भी लाभ नही है। हम अपने लाभ—अलाभ की सीमाओ से बाहर आये। हम उसी लाभ को अपने जीवन मे स्थान दे जो सभी के लिये लाभप्रद हो। अन्य का जी दुखाये या उसे बाधा पहुंचाये ऐसे कृत्यो का परित्याग ही करने में सार है। कई बार मे कहा करता हूं—

दीपक जल उठेगा बाती है पर तेल चाहिए।
वेटरी में वायर है, बल्ब है पर सैल चाहिए॥
महावीर का धर्म शास्त्र विश्व मे छा सके।
क्लेशाग्नि से तप्त संसार के काम आ सके॥
ऐसी क्षमता है, योग्यता है, साधन है, पर—
महावीर के भक्तो मे आपस मे मेल चाहिए॥

क्या हुआ जो हम मे कुछ स्थानकवासी, कुछ तेरापंथी या मूर्ति-पूजक हैं। कोई मुहपत्ती धारक हैं तो कोई खुले मुह। कोई नग्न है तो कोई वस्त्रधारी। मूल वात यह है कि हमारा सभी का लक्ष्य, सभी के साधन,

सभी के रास्ते, सभी का चिन्तन सभी का दर्शन एक है। इतने सारे एकत्व में भला हम क्यों तलाशते हैं विभेद, प्रभेद या विश्रृंखलताएं ? एक सूत्र में बधे होकर भी हम क्यो विखर जाने को आतुर हैं ?

क्या यह विश्वास किया जा सकता है कि हम अपनी अनेकताओं मे भी एकता का बीज रोप सकेंगे और उस परस्पर जुडाव तथा स्नेह के पौधे को लहलहाता देख सकेंगे ? इससे हमे तो लाभ मिलेगा ही, महावीर के सिद्धान्तो को भी अपनी अपेक्षाओ का सुपरिणाम मिलेगा। श्रद्धालुजनो की आस्था समय के खतरे को समझेगी व आये हुए सकट को टालने की पूरी कोशिश करेगी यह अपेक्षा है, यही अनिवार्यता है। आज हर विद्वान, हर साधु, नेतृत्वकर्त्ता अथवा समाज-सुधारक का यह दायित्व हो जाता है वह सम्प्रदाय एव मेरे-तेरे के विष को समाप्त करने के लिए प्रतिरोध की शक्ति बढायें। एक बार फिर मैं अपनी बात के उपसंहार मे आप सभी से कहना चाहता हूँ कि पर्युषण के पावन प्रसग पर हम सभी एक सकल्प करें—

धर्म को सम्प्रदाय का गुलाम नही होने देंगे,
सच को झूठ के हाथो बदनाम नही होने देंगे।
हिम्मत के साथ सकल्प ले किसी भी कीमत पर—
रोशनी को अधेरे के हाथो नीलाम नही होने देंगे ॥

O

८ आत्म-विश्वास अनमोल खजाना है

महानुभावो !

एक होता है विश्वास, जो अन्यो के प्रति होता है। यह पूर्णता भी पाता है तो खडित भी हो जाता है और वही विश्वास जब अपने प्रति होता है तो कार्य सिद्धि सुगम हो जाती है। असभव सा लगने वाला कार्य भी सम्पन्न हो जाता है। आत्म-विश्वास, अभ्यास को पुष्ट करता है। जैसे एक नट प्रारम्भ में नट कर्म मे गिरता पड़ता आत्म-विश्वास अर्जित करता है और जब वह अर्जित कर चुका होता है तो उस कर्म का अभ्यासी हो जाता है। उस स्थिति में उसका अपने प्रति विश्वास सहज हो जाता है। जो औरो को करतब लगता है उसे वह सहज ही सपन्न कर लेता है।

आत्म-विश्वास का अर्जन प्रत्येक के लिए सभव नही। जो दया, करुणा, उदारता से युक्त है, वह सहज ही आत्म-विश्वास पाता है। जो धर्म के आवरण से सम्पन्न है, वह अपने प्रति विश्वास पाता है। जो विवेक तथा नीति से संलग्न है वह अपना अभीष्ट अवश्य पाता है। जो निर्ममता, निर्दयता से जुडा है वह क्लेश का कारण होता है। जो हिंसा तथा आतंक से सम्बद्ध है वह औरो के प्रति क्रूर हो जाता है। जो क्रूरता, जघन्यता से पीडित है वह भला आत्म-विश्वास कैसे पा सकता है ?

कई बार मुझे लगता है कि जीवन को सफल बनाने का सूत्र आत्म-विश्वास है। जिसमे आत्म-विश्वास नही वह कभी भी, कही भी सफल नही हो सकता। आत्म-विश्वास अनमोल खजाना है। जिसमें आत्म-विश्वास होता है वह उपयुक्त साधनो के अभाव मे भी लक्ष्य पा लेता है। आत्म-विश्वास ही व्यक्ति को निर्भयता देता है आत्म-विश्वासी और दृढ़ निष्ठा से जुडा व्यक्ति जो कार्य हाथ मे लेता है उसे पूरा करके ही छोड़ता है। आत्म-विश्वास के अवलम्ब से ही व्यक्ति शिखर तक पहुँचता है। आत्म-विश्वास खो देने से सारा उत्साह शिथिल हो जाता है। आत्म-विश्वास की विमुखता से दु:ख ही पल्ले पड़ते हैं। कहा भी है—

दिल की धड़कनो मे अपने होने का अहसास करें,
औरो पर न सही खुद पर तो विश्वास करें।
निराश होकर बैठने की जरूरत नही—
आओ इन अधेरो मे रोशनी की तलाश करें॥

इतिहास की ये घटनाए आपको भली भाति याद हैं भगवान महावीर के साधना काल मे कितने तूफान और सघर्ष आए पर उन्होने पूर्ण आत्म-बल और विश्वास के साथ अपने आपको सलग्न रखा। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के पास यदि आत्म-विश्वास नही होता तो वे पराजित हो जाते। सीता जैसी महान सती साध्वी ने हँसते-हँसते अनेक दुर्गम घाटियो को पार कर लिया, यह आत्म विश्वास ही तो था। अजना चरित्र आप प्रतिदिन सुन रहे हैं, अच्छी तरह से समझ सकते हैं, प्रतिकूलताओं मे भी अजना का आत्म-विश्वास कितना प्रखर है।

कहने का अभिप्राय मेरा एक मात्र यही है कि जीवन में श्रेष्ठ बात यही होगी कि किसी भी स्थिति मे आत्म-विश्वास न खोया जाय। आत्म-विश्वास यदि जीवत है तो कदम दर कदम सफलताए चरण चूमती हैं। पर यह भी आवश्यक है कि आत्म-विश्वास को इस स्तर तक भी न खीचा जाय कि वह शेखी का स्वरूप ग्रहण कर ले। विश्वास की कई सतह होती हैं, जैसे-जैसे एक उपलब्धि उपलब्ध होती है, स्वत ही और सतहो के उघाडने से उपलब्धिया उपलब्ध होती जाती है। पर अटल आत्म-विश्वास वाला व्यक्ति परिणामो की परवाह नही करता, बीच-बीच मे मिलने वाली थोडी असफलताओ को लेकर चिंतित नही होता। जिसमे सघन विश्वास हो, वह औरो में भी विश्वास पैदा कर देता है, नई ऊर्जा भर देता है। जिसमे विश्वास प्रबल हो, वह किसी के भी द्वारा हतोत्साहित किये जाने पर भी अपना आत्म-विश्वास नही खोता। विश्व मे जितनी भी सफलताए अर्जित की गई है उनके पीछे गहरा आत्म-विश्वास रहा हुआ है। एक आत्म विश्वासी का संघर्ष भी प्रबल होता है। वह जीवन मे कही भी हार नही मानता। वह अनन्त प्रेरणाओ से परिचालित होता है।

व्यक्तिगत विश्वास ही समष्टि के विश्वास मे बदल जाता है। नयी पीढी के प्रति यदि कोई उपकार करना चाहे तो यही कि उसके विश्वास को न तोड़े। उसे सशय के घेरे मे न धकेले। और यह तभी सभव है जब वह व्यक्ति भी अपना आत्म-विश्वास न खोए। आत्म-विश्वास की प्रतिष्ठा हर प्रकार से उत्तम कार्य है। सकल्पो-विकल्पो के प्रति चिंतन से आत्म-विश्वास डगमगा जाता है। मेरी स्पष्ट मान्यता है कि दृढ़ निश्चय द्वारा

ही स्थिरता पाई जा सकती है। जो स्थिर है, दृढ़ है उसका हर कार्य पूर्ण गौरव गरिमा के साथ सुसचालित एव सुनियोजित होता है।

आत्म-विश्वास के अभाव मे बहुधा सारी गतिविधिया गड़बड़ा जाती हैं। उपलब्धियो के करीब पहुँचते-पहुँचते व्यक्ति खाली रह जाता है। मजबूत है यदि आत्म-विश्वास तो निराश होने की कभी कही भी आवश्यकता नही है। एक बार आत्म-विश्वास से जुडकर निराशा के कारण जो आखे बद हैं उन्हे खोलकर देखें, अपने चारो ओर प्रकाश ही प्रकाश का अहसास करके मन थिरक थिरक उठेगा। कहा भी है—

बहुत बार खुद को खुद पर ही विश्वास नही होता,
कुछ होता है भीतर पर अहसास नही होता।
परदो के ऊपर परदे और बद पड़े हैं दरवाजे—
दस्तक देती रोशनी पर आभास नही होता।

और भी एक चतुष्पदी स्मृति के मंच पर उभर आई है—

जलन जानी नही मगर जलते रहे,
राह पहचानी नही मगर चलते रहे।
रोशनी ने आकर आवाज दी—
पर हम अंधेरे मे आंखे मलते रहे॥

तो, बात यह है कि आत्म-विश्वास से ही पहचान स्पष्ट होती है, फिर औरो को समझना सहज हो जाता है। आत्म-विश्वास के लिए आत्मा मे विलय होना जरूरी है और यह तभी सभव है कि जब आदमी सहज हो। कृत्रिमता से स्वय का हनन होता है। विश्वास के टूटने पर आदमी स्वयं विरोध में खडा होता है। विश्वास प्रयासो से उपलब्ध होता है। एक बार, दो बार, तीन बार, बार-बार प्रयास करने पर आखिर सफलता मिलती ही है। आखिर कोई न कोई लहर चट्टान तोडती है पर उस चट्टान को तोडने वाली लहर के पीछे उन पिछली अनेक लहरो का बल है। उन लहरो मे स्थित आत्म-विश्वास ने ही तो चट्टान को तोड़ने मे अंततोगत्वा सफलता पाई है।

यह निश्चय मानकर चलिए कि किसी की बढत अन्यो को पीड़ा देती है। इसलिए विकास के पथ मे अवरोध तो आते ही हैं, पर आत्म-विश्वास ही ऐसी संविधि है जो सारे अवरोधो को निरस्त कर देती है। माना कि यह फूलो से बिछी राह नही है पर काँटो की चुभन झेलने वाले

परिणाम मे जो पाते हैं वह कहीं ज्यादा स्थाई और पूर्ण होता है। आत्म-विश्वास किसी की मेहरबानी का मोहताज नही होता। यह व्यक्ति का अपना खुद का सृजन होता है। जो अपना अर्जन होता है उसे अपने अनुरूप बनाने मे कठिनाई नही होती।

आत्म-विश्वास जिसने पा लिया वह कष्ट, चिता, व्यथा, रोग, पराधीनता सभी से वचित हो जाता है। जो जीवन मे कठिनाई उत्पन्न करते हैं उनसे बचने का मार्ग मिल जाए तो जीवन मे हर प्रकार की यत्रणा से मुक्ति मिल जाती है। इसलिए मैं सबसे प्रमुख बात आज यही देना चाहता हूं कि अपने आत्म-विश्वास को अटल रखें। और सबसे अतिम सीख भी यही है कि अपने आत्म-विश्वास पर कायम रहे, इससे डिगे नही। विचलित करने वाले कई होते हैं पर विचलित, कंपित, शकित एव व्यथित न बनें। स्वतः ही आपके सारे कार्य सफलता की ओर अग्रसर होगे। आपकी नेतृत्व शक्ति जागेगी। आपकी बुद्धि मे, प्रतिभा मे अनिवृद्धि होगी। आकांक्षाओं की पूर्ति होगी। अवधारणाओ को आधार मिलेगा। आत्म-विश्वास अभय प्रदान करता है, प्रशांति सौंपता है, संतोष को जीवन मे प्रवेश देता है।

o

६ जिन प्रेम कियो, प्रभु पायो

महानुभावो !

अभी-अभी एक भाई ने यह स्लिप लिखकर प्रेषित की है कि आज आप प्रेम के महत्व पर कुछ प्रकाश डालें। बहुत अच्छी बात है, प्रेम से महत्वपूर्ण क्या है इस संसार मे ? जीवन की, परिवार की, सारे ससार की समस्याओ को प्रेम से जुडकर निर्मूल किया जा सकता है। यह दोहा तो याद है न आपको—

पोथी पढ पढ जग मुआ, पडित भया कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढे सो पडित होय ॥

निश्चित रूप से जीवन में प्रेम का महत्व निर्विवाद है। प्रेमशून्य जीवन दरअसल जीवन हो ही नही सकता। प्रेम संसार की वह शक्ति है, जिसके द्वारा समस्त सृष्टि को सुख-चैन और शान्ति से जीता जा सकता है। सत्ता या क्रूरता के बल पर जो वस्तु प्राप्त की जाती है उस पर अधिकार अधिक समय तक नही रखा जा सकता। लेकिन जब प्रेम के बल पर हम किसी वस्तु को अपने अधिकार मे लाते है तो वह स्थाई रूप से हमारे अधीन हो जाती है।

सम्राट अशोक ने अपनी शक्ति के आधार पर कलिग को पराजित कर दिया। उसके पैरो के नीचे शत्रु का मुकुट पड़ा हुआ था। वह शत्रु के सैनिक की खोपडियों का जो चाहे कर सकता था, लेकिन उसे महसूस हुआ – यह विजय सच्ची नहीं, आखिर कब तक मैं इनको भयभीत करके रखूंगा। आखिर कब तक यह मेरे सामने मजबूरी मे सिर झुकाएंगे। भगवान् बुद्ध के दर्शन को व्यावहारिक रूप मे ढालने के लिए उसने तलवार को त्यागकर प्रेम से दुनिया को जीतने का निश्चय किया। आज हम अशोक

को क्रूर और आततायी शासक के रूप मे क्षमा कर चुके हैं। उसके प्रेम, करुणा और शान्ति पर नत-मस्तक होते हैं।

शक्ति के मद में व्यक्ति अन्धा हो जाता है। सिकन्दर-नादिरशाह चगेजखान जैसे क्रूर शासको की इस धरती पर कमी नही रही है। उन्हे अपनी शक्ति पर आवश्यकता से अधिक भरोसा था, उन्होने अपार नर-सहार किया, लेकिन अपने जीवन के अन्तिम काल मे क्या उन्होने पश्चाताप नही किया ? क्या जब उनके जबडो मे इतनी शक्ति नही रह गई कि वह सत्ता को चबाकर आनन्दित हो सकते तो क्या उन्होने पश्चाताप् नही किया ?

प्रेम व्यक्ति को चिर-स्थाई बना देता है। जिसने प्रेम करना नही सीखा, वह ईश्वर को भी नही प्राप्त कर सकता। प्रेम एक खुशबू है— एक सोने की सीढी है—झील की स्वच्छता है और चादनी की शीतलता है। जिसे इनकी प्राप्ति हो गई समझो जीवन के सारे सुख स्वत ही उसके कदमो मे झुक गये। एक शायर ने लिखा था—

अमीरी मालो दौलत मे, समझना कम निगाही है।
जहाँ मिलकर रहे दो दिल, वही पर बादशाही है॥

सत वाणी मे कहा गया है—

'जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभु पायो।'

प्रेम के लिए त्याग की आवश्यकता होती है। जो प्यार करके बदले मे कुछ पाना चाहते हैं वह प्रेम नही करते मानो व्यापार करते हैं। बगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार शरद चन्द्र चट्टोपाध्याय का कथन है कि 'सच्चा प्रेम कभी प्रतिदान नही चाहता।'

हिन्दी के कवि जयशकर प्रसाद ने भी प्रेम मे त्याग का दर्णन करते हुए कहा है—

पागल रे वह मिलता कब, उसको तो देते ही सब।
फिर तू क्यो उठता पुकार, मुझको न मिला रे कभी प्यार॥

वस्तुतः व्यक्ति यदि सफलता के चरम शिखर पर पहुचना चाहता है तो उसे प्रेम का मार्ग अपनाना होगा। घृणा का नही। उसे उन्माद को त्यागना होगा।

जिसके हृदय मे प्रेम का उजाला होता है, उसका धैर्य कभी टूटता नही। वह कठिन से कठिन परिस्थिति पर भी विजय पा लेता है और तो क्या उसे मौत का भी भय नहीं लगता। भय ही उससे भयभीत होकर भाग जाता है।

भगवान् महावीर को सगम देवता ने एक रात मे कितने मारणान्तिक कष्ट दिये। लेकिन वह एक पल के लिए भी भयभीत नही हुए। वस्तुत जो अपने हृदय पर विजय प्राप्त कर लेता है, ससार की कोई शक्ति उसके सामने सिर नही उठा पाती। वह अजेय वन जाता है। जो प्रेम मे विश्वास रखता है वह किसी का भी हृदय परिवर्तित कर सकता है। अनायास मेरे मन की वीणा पर कुछ पक्तिया थिरकना चाह रही हैं—

प्रेम ही ससार मे, सारे सुखो की खान है।
प्रेम ही है देवता और प्रेम ही भगवान् है॥

गांधीजी का हृदय परिवर्तन प्रेम की तुला पर विद्यमान था। यदि हमारे हृदय मे दूसरो के प्रति प्रेम की भावना है तो जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण सकारात्मक होगा—नकारात्मक नही। हम गिलास को आधे भरे हुए को आधा भरा ही देखेंगे गिलास को खाली रूप मे नही देखेंगे। ससार मे कुछ लोग सिर्फ देवताओ की तलाश में रहते हैं और कुछ बुरे लोगों को सजा देने की बात करते हैं, लेकिन जिसके दिल में प्रेम है, वह जानता है कि कोई भी मनुष्य पूरी तरह से न अच्छा होता और न बुरा होता है। वह अच्छाई और बुराई का मिश्रित रूप है। वह सौजन्यतापूर्ण विशाल दृष्टिकोण लेकर प्यार की गगा वहाता चलता है। वह विद्वेष लेकर किसी को उछालता नही है अपितु उसे इतना प्यार देता है कि भूला हुआ इन्सान भी अपनी भूलो का अहसास करके सजगता-पूर्वक अपने जीवन को स्वर्णिम बना लेता है।

किसी ने कहा है—

प्यार तो समझो केवल प्यार होता है।
यहां पर हर सवाल बेकार होता है।
सवाल जवाव होते हैं सिर्फ गणित मे—
प्यार मे बस खुद का विस्तार होता है॥

मुझे ईसा-मसीह की जिन्दगी का एक पृष्ठ याद आ रहा है—

एक बार कुछ लोग एक स्त्री को पत्थर मार रहे थे। वह लहु-लुहान अवस्था मे चीख-पुकार कर रही थी कि मुझे मत मारो, लेकिन किसी ने उसकी पुकार नहीं सुनी, उस पर पत्थरो की बरसात होती रही। उस रास्ते से ईसा-मसीह गुजरे, उन्होने उठे हुए हाथों को रोकते हुये कहा—'इसे मत मारो—इसे क्षमा कर दो।'

लोगो ने कहा यह पापिन है, यह मार खाने के लायक है, इसे सजा मिलनी ही चाहिये। ईसा-मसीह ने कहा—हां तुम इसे मारना चाहते हो तो अवश्य मारो, लेकिन इसे पहला-पत्थर वह मारे जिसने अपने जीवन मे कभी गुनाह न किया हो। सभी के दिल मे अपने गुनाह उभर आये। हाथ शिथिल हो गये और वे सिर झुकाकर चले गये।

इस संसार में महान से महान व्यक्ति भी जीवन मे कभी न कभी रास्ते से भटककर गुनाह कर बैठते हैं। ऐसी स्थिति मे उसे किसी को सजा देने का क्या अधिकार है। आतक के आधार पर जो परिवर्तन आता है, उसमे स्थायित्व नही होता। आज तलवार की नही, प्यार की जरूरत है।

जिसके दिल में प्रेम का पौधा अकुरित हो जाता है, वह किसी को सजा देने मे नही, उसे अपने कलेजे से लगाने मे विश्वास करता है। आज धरती पर जगह-जगह बारूद बिछा हुआ है। कही कोई रास्ता निरापद नही।

नफरत के केक्टस हर जुबान पर हर हाथ मे और हर दिल मे उग आये है। यदि हमे नफरत के इन केक्टसो को उखाडना है तो आवश्यकता है कि हम प्रेम के पौधे लगाएं। प्रेम हमे यह सिखायेगा कि गैर नहीं, सब हमारे अपने हैं।

एक बार फिर मैं प्रेम की महत्ता के बारे मे आप सभी से कहना चाहूंगा—

प्रेम ही बस्ती है लोगो और बस्ती कुछ नही।
प्रेम ही मस्ती है लोगो और मस्ती कुछ नहीं।
और सारी हस्तिया तो वक्त का तूफान केवल—
प्रेम ही हस्ती है लोगो और हस्ती कुछ नही॥

जोधपुर मे हमारा प्रथम बार आगमन हुआ है पर जोधपुर के भक्ति

प्रेम से ओत प्रोत वातावरण ने निश्चित रूप से मेरे मन को प्रभावित किया है। न केवल जोधपुर शहर ही बड़ा है। अपितु यहां के लोगो के दिल भी बड़े हैं। साम्प्रदायिक संकीर्णताओ से अलग-थलग रहकर विशुद्ध स्वस्थ दृष्टिकोण लेकर जीने वाले यहा के निश्छल हृदयी भाई-बहनो को मैं बहुत बहुत बधाई देता हूं।

यहां हमने किसी भी प्रकार का अन्यथा अनुभव नही किया, स्थानकवासी, मूर्तिपूजक, तेरापंथी, दिगम्बर सभी परम्पराओं के उपासकों में अच्छा प्रेम है।

यह इस प्रेम का ही तो प्रतीक है कि इस बार जोधपुर मे देखिए कई बार संयुक्त कार्यक्रम हो चुके हैं।

व्यक्ति, परिवार, समाज, संघ, गांव, नगर, प्रान्त और राष्ट्र पूरे ससार में निरन्तर प्रेम स्नेह एवं आत्मीयता की अभिवृद्धि हो इसी मगल कामना के साथ अचानक मन मस्तिष्क मे उभर आई चन्द पंक्तियां देकर अपने वक्तव्य को पूर्णता दे रहा हूं—

छोटी सी जिन्दगी है तकरार किसलिए।
रहती खडी दिलो मे दीवार किसलिए।
है साथ कुछ दिनो का फिर सब जुदा जुदा—
राहो मे हम बिछाए फिर खार किसलिए॥

१० | आखिर, नारियों की उपेक्षा कब तक ?

महान विभूतियो को जन्म देने वाली नारी शताब्दियो से पुरुष के दंभ और शोषण का शिकार रही है। उसने सभ्यता और सस्कृति के सुन्दर सुमन खिलाए हैं। बदले मे पुरुष ने कभी उसे पुरानी कमीज के समान उतार दिया, कभी घिसे हुए जूते के समान त्याग दिया तो कभी खत्म होती हुई सिगरेट के समान मसल दिया।

जिसके हृदय मे करुणा का सागर है, उसकी आँखें हमेशा अश्रुओं में डूबी रहती हैं जिस कोख से उसने ईश्वर के आश्चर्य के रूप मे बोलती हुई तस्वीरो को जन्म दिया है, जिस कोख मे सृष्टि पलती है पुरुष ने उसी का व्यापार किया है। उसके जो पाँव सबल बनकर मजिल की ओर ले जाते हैं, पुरुष ने उन्ही मे विवशता के घुघरू बाधे हैं।

जाने कब से वह शारीरिक और मानसिक पीडा सहती आ रही है। उसे हमेशा हीनता की दृष्टि से देखा गया। वह यदि विवाह के तुरन्त बाद विधवा हो जाए तो निःशेष जीवन एकाकी व्यतीत करने के लिए विवश होना पडता है। दूसरी ओर उसकी राख ठण्डी भी नही होती कि पुरुष किसी दूसरे के हाथो पर मेंहदी के फूल खिलाकर ले आता है।

वह शताब्दियो से प्रताडित होती आ रही है। साहित्यकारो ने भी उसके कामिनी रूप का ही अधिक वर्णन किया है। उसकी बेबसी को समझने का प्रयास कम ही किया है। शेक्सपियर ने हेमलेट नाटक मे उसे दुर्बलता का ही दूसरा रूप कहा है तो तुलसी ने उसकी तुलना शूद्र, ढोल गवार और पशु से करते हुए कहा—

शूद्र, गवार, ढोल पशु नारी।
ये सब ताडन के अधिकारी॥

यह समस्या भारत की ही नही, पृथ्वी के अधिकांश भागो मे है। हम भले ही वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से इक्कीसवी शदी के द्वार पर खड़े

हैं लेकिन नारी आज भी एक ऐसे दोराहे पर खड़ी है जहां सिर के ऊपर न तो छत है, न पांव के नीचे जमीन है। आज भी वह समस्याओं की आग में जल रही है। आज की रूढियो एवं अन्धविश्वासो के राक्षस उसका अट्टहास कर रहे हैं। राजस्थान की रूपकंवर सती के नाम पर जबर्दस्ती चिता पर बिठा दी गई, वह चीखती-चिल्लाती रही लेकिन उसकी पुकार जय जयकार के नारो के बीच दब कर रह गई।

दहेज का सर्प उसकी किस्मत पर आज भी कुण्डली मारे बैठा है। कलकत्ते मे तीन अविवाहित बहनो ने गले में फांसी लगाकर सिर्फ इसलिए आत्महत्या करली, क्योकि उनका गरीब पिता काले धन के आधार पर योग्य वर नही खरीद सकता था। अनगिनत मासूम लड़कियां या तो आये दिन दहेज की आग मे जल रहा हैं या फिर नौकरानी का जीवन बिताने के लिए विवश हो रही है।

उत्तर प्रदेश के एक प्रसिद्ध लोकगीत की याद आ रही है, जब अपनी बहन को लेने के लिए एक भाई ससुराल गया तो देखा—वह मैले व फटे पुराने कपडो मे लिपटी पहाड सी जिन्दगी को अपने हृदय में उठाये हुए थी। दहेज के अभाव में उसे नित्य-प्रति यातनाए दी जाती थीं। भाई द्वारा प्रश्न करने पर कि तुम ससुराल मे कैसी हो? उसने उत्तर दिया--

"कपडा तो देख भैया भोरो सावन की भीजी जस बदरिया रे'

वह भाई खाली हाथ इसलिए लौट आया क्योकि बहन की ससुराल में नौकरानी की भूमिका निभाने वाला कोई और न था। जब गांव वालों ने पूछा कि तुम्हारी बहन, ससुराल मे कैसी है? तो उसने उत्तर दिया—

लोहवा जरे जैसे लोहरा दुकनिया रे।
बहना जरै ऐसे ससुरिया रे॥

अर्थात् जैसे लुहार की भट्टी में दिन रात लोहा जलता है ऐसी ही मेरी बहिन ससुराल में जलती रहती है।

यह स्थिति उन अनेक नारियों पर लागू होती है, जिनके पिता उन्हे दहेज नही दे पाते हैं। दहेज के कारण अनेक अबलाओ को अनमेल विवाह का शिकार होना पड़ता है। जहां पर शारीरिक, मानसिक रूप से कुण्ठित रहते हुए मुस्कान तक भूल जाती हैं। उनके होठ जहरीले हो जाते हैं। उनका जीवन उस आगन के समान है जिसमे हमेशा मुर्दा सपनो की लाशें पडी रहती हैं। इसी दुष्प्रथा के कारण अनेक लड़कियो को अविवाहित रहना

पडता है या फिर ऐसे चकलों की शरण लेनी पडती है, जहां हर रात वह दुल्हन की तरह संवरती है और सुबह होते-होते विधवा हो जाती है।

बडे शहरो की बात छोड दीजिए, आज भी अधिकांश गांवो और शहरो में नारी अशिक्षा और अज्ञानता के पंजो में जकडी हुई है। शिक्षा की रोशनी का उजाला अभी तक गांवो तक नही पहुचा है। दूर-दराज के प्रदेशों मे उसे शिक्षित करने की सरकारी नीतियां 'नौ दिन चले ढाई कोस' की कहावत को चरितार्थ करती हैं। अशिक्षा के कारण वह अपने आत्म-बल को पहचानने मे अक्षम है। अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष मे संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा दिया गया नारी सम्मान के लिए जो नारा था वह भी पूर्णतया क्रियान्वित नहीं हो पाया।

नारी से मात्र वासनात्मक परितोष प्राप्त करने की प्रवृत्ति आज भी यथावत् विद्यमान है। उनके प्रति समाचार पत्रों में ऐसी अनेक घटनाए प्रकाशित होती हैं जो इस दृष्टि से नारी की पीडा की कहानी सुनाती हैं। पुरुष ने उसे मां-बहन के रूप मे जैसे घर की चार दीवारी तक ही देखना सीखा है। बाहर पाव रखते ही उसे हर औरत चौराहे पर खडी हुई प्रतीत होती है। उसे देखकर आंखो मे सिर्फ वासना के लाल डोरे ही उत्पन्न होते हैं।

अभी दो वर्ष पूर्व हुए पुष्कर राजस्थान के उस काण्ड को कौन भुला सकता है। जिसमे एक पुत्र को मां के साथ शारीरिक संबन्ध स्थापित करने के लिए विवश किया गया था। जब सरे आम लोगो की भीड के बीच उसे पुलिस वालो ने मिलकर अपमानित किया था। वह निर्वस्त्र चीखती-चिल्लाती रही और क्रूर दिलो मे तनिक भी रहम नहीं उपजा। उसका इस दुनिया मे स्वयं को सुरक्षित रख पाना असम्भव सा हो गया है।

नारी संरक्षण के नाम पर जो निकेतन खुले हैं वहां भी वह अपने आंचल को बचा पाने मे सुरक्षित नही है। मुझे एक अखबार में पढी खबर याद आती है। रक्षा बन्धन के दिन एक बहन, भाई को राखी बांधने के लिए उसके शहर गई, जहां लोगो की गिद्ध दृष्टि उस पर पडी और वह पवित्र दिन उसके लिए दुर्दिन बन गया।

महानगरो मे स्वावलम्बी बनने के लिए अनेक नारियां पढ़-लिखकर नौकरी करने लगी हैं। यहां भी वह समस्याओ से मुक्त नही हो सकी हैं। उन्हे दोहरी जिंदगी जीने के लिए विवश होना पडता है। दिन भर नौकरी करती हैं। सुबह शाम घर का काम भी करना पड़ता है। पुरुष की भूखी

नजरो से बचने के लिए उसे दफ्तर, बसों में हर जगह सतर्क रहना पड़ता है।

देहली की घटना याद आ रही है। एक कामकाजी महिला नौकरी से लौट रही थी। एक प्राइवेट मिनी बस वाले ने उसकी इज्जत लूटनी चाही। वह चलती बस से कूद गई। बाद मे कुछ दिनो तक अखबारों और दिल्ली की सडको पर शोर भी बहुत हुआ लेकिन स्थिति वही ढाक के तीन पात वाली रह गई।

सेवारूपा और करुणारूपा होने पर भी वह कुटुम्ब, परिवार, देश और समाज में सदैव प्रतिकूल परिस्थितियो से लड़ती रही है। उसके मैले आंचल मे दुनिया भर के दु ख सिमटे हुए हैं। दु ख को भी धर्म मानकर वह चुपचाप सहती आई है। वह जन्म से लेकर मृत्यु तक बंधनो में जकड़ी रहती है। उसके जन्म लेते ही सबके चेहरे से खुशी गायब हो जाती है। सभी को लगता है जैसे उसके रूप मे आपत्ति ने जन्म ले लिया है। पुत्र चाहे कितना ही निकम्मा हो, उसे कलेजे से लगाया जाता है और नारी चाहे कितने ही गुणो से युक्त हो वह उपेक्षित रहती है। पुरुष द्वारा उसकी उपेक्षा से व्यथित होकर जयशंकर प्रसाद ने कामायनी मे कहा है—

तुम भूल गए पुरुषत्व मोह मे,
कुछ सत्ता है नारी की।
सभी सत्ता सम्बन्ध बनी,
अधिकार और अधिकारी की॥

मैं अत्याचार, अनाचार, दुराचार और अनगिनत समस्याओ और उपेक्षाओ के जगल से घिरी नारी को आह्वान करना चाहता हूँ कि वह अपनी शक्ति को पहचाने। पुरुष ने उसे बहुत सताया और वह चुपचाप सहती रही। अब वह अपनी गौरव गरिमा और महिमा को पहचाने और विपरीत परिस्थितियो का मुह तोड जवाब दे। प्रसिद्ध उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द का कथन है—

'मनुष्य को दृष्टि प्राप्त होती है तो नारी को दिव्य दृष्टि।' विश्व कवि टैगोर ने नारी के बाह्य और आतरिक सौन्दर्य को उद्घाटित करते हुए कहा था—'इसमे जहां कुमुदिनी के समान कोमलता और सुकुमारता है वहां वह दृढता और उत्साह की भी धनी है। जिसके कारण वह पुरुष को पीछे छोड देती है। वह पुरुष को आगे बढ़ने की प्रेरणा तो देती ही है साथ ही प्रेम, दया और करुणा की प्रतिमूर्ति भी है।'

जैन धर्म में अनेक ऐसी महान नारियों की गाथाए हैं जो प्रेरणा का विषय बन सकती है। मैना सुन्दरी ने अन्धविश्वास और मिथ्या मान्यताओं को तोडा। राजुल ने परिवार और समाज की चिंता न करते हुए ऐसे मार्ग को अपनाया जिस पर नंगी तलवार पर चलने के समान था। उसने अनेक समस्याओ और कष्टों का सामना किया और मुक्ति की खोज में लगी रही। चन्दना ने भी समाज को नीद से झकझोरा। कुन्दकुन्द की माता ने कुन्दकुन्द को महान सिद्धांतवादी और अध्यात्मवादी बना दिया। आज हमारी श्रमण संस्कृति मे जितने भी सघ हैं, उनमें नारियो की संख्या अधिक है। समाज मे क्राति पुरुष वर्ग नहीं ला सकता, वह नारी अपनी आस्था और विश्वास के बल पर उत्पन्न कर सकती है।

वह बहुत सहन कर चुकी है, अब उसे चाहिए कि वह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शोषण को न सहे। वह अनवरत आगे बढे और अपने दिव्य गुणो का शंखनाद एक बार फिर से बजाये। किसी ने लिखा है—

तुम उस देश मे जन्मी हो, जिस देश में जन्मी थी सीता।
तुम उस देश की कन्या हो, जिस देश मे गूंज रही गीता॥
देखो कही भटक मत जाना, झूठे हास-विलासो मे।
करना ऐसा काम तुम्हारा, नाम रहे इतिहासों मे॥
हर घर को तुम स्वर्ग बनाना, हर आंगन को फुलवारी।
नई उमर की कलियां तुमको, देख रही दुनियां सारी॥

हे नारी! तुम त्याग, क्षमा, प्रेम, उदारता विनय, सहिष्णुता तथा सेवा आदि गुणो से स्वय को अलंकृत करो। अपने कर्त्तव्यो के प्रति जागरूक रहते हुए अन्याय और अधर्म का विरोध करो और अपनी अस्मिता की रक्षा करो। तुम्हे शताब्दियो का काला इतिहास बदलना है। जिस आकाश में हिंसा की आग बरस रही है तुम्हे शांति और प्रेम की बदली बनकर छा जाना है। गाधीजी के इस स्वप्न को साकार करना है—

'वह सेवा को अपना अधिकार समझती है इसलिए देवी है, वह त्याग करना जानती है इसलिए साम्राज्ञी है, विश्व उसके वात्सल्यमय आचल मे स्थान पा सकता है, इसलिए जगन्माता है।'

❀

११ | तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु

महानुभावो !

अभी अभी हमारे मुनिश्री ने बहुत ही उपयोगी बात आपके सामने रखी थी कि व्यक्ति के जीवन का विकास और विनाश उसके शुभाशुभ विचार चिंतन पर निर्धारित है। आगमो मे एक महत्वपूर्ण सूत्र है-- **'परिणामे बन्धे, परिणामे मोक्खो'** अर्थात् तुम्हारा बधन और मोक्ष तुम्हारे परिणाम याने विचार पर आधारित है। शुभचिंतन से बिगडा हुआ जीवन बन जाता है, वही अशुभ चिंतन से बना बनाया जीवन बिगड जाता है।

वस्तुत चिंतन व्यक्तित्व का आयना है। व्यक्ति जब स्वस्थ चिन्तन की ओर उन्मुख होता है तो जीवन की विषमताएँ स्वत ही समाप्त हो जाती हैं। जब चिन्तन बीमार होता है तो व्यक्ति एक के बाद एक विपत्तियो से ग्रस्त होता चला जाता है। स्वस्थ चिन्तन एव अस्वस्थ चिन्तन से अभिप्राय क्या है ? यह जानना आवश्यक है--'वह चिन्तन जो मात्र व्यक्तिपरक होता है, केवल स्वार्थो के वशीभूत होकर रह जाता है, जो स्वार्थ पर केन्द्रित रहता है, उसे बीमार चिन्तन कहा जा सकता है। दूसरी तरफ जो चिन्तन, परोपकार की ओर उन्मुख होता है, उसमें दूसरो का दुःख दूर करने, प्रेम का सन्देश देने की क्षमता हो, लोक मगल मे सहायक हो, उसे स्वस्थ चिन्तन कहा जा सकता है।

सोचते तो सभी हैं, लेकिन किसी का सोचना इतिहास के स्वर्णाक्षरो मे लिखा जाता है। आगम, गीता, रामायण ग्रन्थ आदि जो हमारे सामने उपलब्ध हैं, वे सत्पुरुषो के सत्चिन्तन का ही तो नवनीत हैं।

स्वस्थ चिन्तन संयमित नदी की तरह होता है जो जिस रास्ते से गुजरती है, लोगो की न केवल प्यास बुझाती है अपितु हरियाली भी उत्पन्न करती है। नदी का जल सदैव निर्मल रहता है। कही से भी लोग

अंजुली भरकर अपनी प्यास बुझा लेते हैं। इसी प्रकार स्वस्थ चिन्तन लोगो की आत्मा की प्यास बुझाता है। उनकी तपन को दूर करता है। अस्वस्थ चिन्तन किसी बरसाती नाले की तरह होता है। बरसाती नाला जिस रास्ते से गुजरता है, विनाश लीला मचाता है, किनारे के वृक्षों को जड़ से उखाड़ता चला जाता है, न जाने कितनी झोपड़ियो को धराशायी भी कर देता है।

आज जगह-जगह रुग्ण चिन्तन के बरसाती नाले फूट रहे हैं, दुनिया बर्बाद हो रही है। पिछले दिनो दुनियां मे घटित एक विनाशकारी घटना इसका परिणाम है।

अभी पिछले वर्ष की बात है कि एक शासक ने अपने रुग्ण चिन्तन के वशीभूत होकर एक देश पर अनावश्यक अधिकार कर लिया था, बदले मे न जाने कितने लोगो की जाने गयी, कितने तेल के कुओ मे आग लगी और समुद्र मे छोडे गए तेल के कारण कितने समुद्री-प्राणियो की अनायास मौत हुई। मृत्यु को यह विनाश लीला आज कहाँ नही हो रही है। भारत में ही लीजिए—कश्मीर, पजाव और आसाम की युवा-पीढी बीमार चिन्तन के कारण उग्रवाद के पथ पर बढ रही है। उनके दिमाग पर एक विशेष प्रकार का मुलम्मा चढा हुआ है। उनकी आखो पर एक विशेष प्रकार का चश्मा लगा हुआ है। वह विदेशियो के हाथो बिककर अपने भाई-बहनो की हत्या कर रहे हैं। वह जिसे देश-भक्ति समझते हैं, वह उनके अन्दर का शैतान है। यह शैतान जब जगता है तो कभी धरती पर नादिरशाह के रूप मे आता है तो कभो चगेजखान के रूप मे तो कभी सद्दाम हुसैन के रूप मे।

आज का चिन्तन तैयार हो रहा है, अधकचरी अश्लील फिल्मो, पाश्चात्य सभ्यता से रगे हुए दूर-दर्शन के कार्यक्रमो और पटरी पर बिकने वाले साहित्य से। यह अश्लील फिल्मो और घटिया साहित्य हमे पतन की ओर धकेल रहा है। यदि समय रहते इस घातक बीमारी के कीटाणु फलाने वाले सैलाब को न रोका गया तो अच्छाइयो के अस्तित्व के लिए बहुत बडा खतरा उत्पन्न हो जाएगा।

आज व्यक्ति के, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक जीवन मे सतापो एव समस्याओ का जो एकछत्र साम्राज्य दिखाई देता है, उसके मूल में विकृत चिन्तन पद्धति है। मन्दिर-मस्जिद-स्थानक, गिरजा-घर आदि के जो झगड़े आज इन्सान का खून बहा रहे हैं, वह भी गन्दे

चिन्तन की देन है। मेरी मान्यता से विकृत चिन्तन से जितना खतरा है, उतना जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण एव वायु प्रदूषण से नही।

अस्वस्थ चिन्तन विषैले भोजन को भांति होता है। विष का भोजन शरीर में आता है तो धीरे-धीरे अपने जहर से जी जीवन शक्ति को समाप्त कर मौत की ओर धकेल देता है। आज हम जो जहरीला भोजन खा रहे है इसके खतरनाक परिणाम को एक पल के लिए भी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए।

दुर्भाग्य की बात है, इस देश की सरकारें भी केवल सत्ता-लिप्सा के स्वार्थ केन्द्रित चिन्तन से जुड़ी हुई है। इस पिछले दशक से इस देश में हर सरकार हिलते हुए दांत की तरह दिखाई देती रही है। यह बीमार दाँत आस-पास के स्वस्थ दाँत को भी बीमार कर गिराने की ताक मे है। यदि इन बीमार दांतो का इलाज नही किया गया तो एक दिन देश का सारा जबड़ा ही बाहर निकल आएगा।

रुग्ण चिन्तन किसी जले बीज की तरह होता है, जिससे फसल नही उग सकती। इस संदर्भ में एक लोक कथा याद आती है—

एक साहूकार बहुत धनी था। अधिकाधिक धन जोड़ने की लालसा ने उसे पशु के समान बना दिया था। वह गरीब और अनपढ़ को थोड़ा कर्ज देता और अंगूठा लगवा लिया करता। धोखे का सहारा लेकर वह उनके घर नीलाम करा देता। उसके कारण न जाने कितने लोग दर-दर के भिखारी बन गए। वह दिन रात सोने-चांदी के ढेर पर बैठकर अट्टहास करता। लोगों का गला काटने के बाद वह प्रतिदिन गांव के बाहर एक मन्दिर मे जाता और कहता—हे भगवान् मुझे मुक्ति प्रदान करो। उस मन्दिर का पुजारी साहूकार की सच्चाई से भली-भांति परिचित था, उसने साहूकार को सबक सिखाने की सोची।

एक दिन जब साहूकार मन्दिर में आया तो पुजारी जले हुए दानो पर पानी डालने लगा। साहूकार ने कहा—ये क्या कर रहे हो इससे भी कही फसल उग सकती है। पुजारी ने जवाब दिया—'सेठजी आपके धोखेपन की भाड़ मे आपकी प्रार्थना और भक्ति जल गई है, किन्तु फिर भी आप उसके द्वारा मुक्ति रूपी फसल उगाने का प्रयत्न कर रहे हैं। जली हुई प्रार्थना से अगर आपको मुक्ति-रूपी फल प्राप्त हो जायगा तो, इन भुने हुए चनो से फसल क्यो नही उगेगी ?' पुजारी की बात सुनकर साहूकार की

आंखें खुल गईं और संकल्प कर लिया कि वह कभी किसी की मजबूरी का अनावश्यक फायदा नही उठाएगा।

स्वस्थ चिन्तन व्यक्ति का मित्र है तो अस्वस्थ चिन्तन उसका शत्रु है। वाह्य शत्रु जितनी हानि नही करते, उतनी हानि अशुभ विचार करते हैं। रात-दिन के अशुभ विचार बने बनाए जोवन को ध्वस्त करदेते हैं। शान्ति एव सफलता के आकाक्षो साधक को चाहिए कि अधिकाधिक तो वही निरन्तर के शुभ विचार विकृत जीवन को सुसकृत सुरम्य बना देते जागरूक रहकर 'तन्मे मनः शिव सकल्पमस्तु' के चिन्तन से अपने आपको सयुक्त करें। एक बार मैंने लिखा था—

आप कहते हैं कि घूमने के लिए एम्वेसडर कार चाहिए।
बहनें कहती है कार नही हमे तो हीरो का हार चाहिए।
महावीर ने जीवन विकास के लिए कहा था कि—
हर पल मन मे अच्छे विचार चाहिए॥

१२ | समस्याओं का मूल : ईर्ष्या का जहर
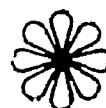
महानुभावो !

आज की चर्चा मैं एक चतुष्पदी से आरम्भ कर रहा हूँ—

कितने-कितने दाग छुपे हैं भीतर मे,
कितने-कितने नाग छुपे हैं भीतर मे।
यो तो डरते हैं छोटी-सी चिनगारी से—
किन्तु भयकर आग छुपी है भीतर में॥

सचमुच, बाहर की आग से ज्यादा खतरनाक भीतरी आग है। ईर्ष्या भीतरी आग है।

अग्नि शरीर को जलाती है लेकिन ईर्ष्या से मनुष्य की आत्मा तिल-तिल कर जल जाती है। ईर्ष्यालु अपने चारो तरफ पतन की सामग्री एकत्रित कर लेता है और नीच गति को प्राप्त करता है। ईर्ष्या के आवेग मे मनुष्य राक्षस की तरह भयंकर बन जाता है। ईर्ष्या मे अन्धा हुआ व्यक्ति अपने पास मे खड़े माँ-बहन और बच्चे तक को भी मारने के लिए तैयार हो जाता है।

इस सन्दर्भ में मुझे एक कहानी याद आ रही है—'एक रानी को अपनी सुन्दरता पर बहुत गर्व था। उसका यह कहना था कि इस संसार में सौन्दर्य की दृष्टि से कोई भी मेरा प्रतिद्वन्द्वी नही है। वह सौन्दर्य विशेषज्ञों से अपने सौन्दर्य की तारीफ सुनती और खुशी से फूली नही समाती। एक दिन वह दर्पण के सामने खड़ी शृंगार कर रही थी। उसकी अपनी बेटी उसके पास आई और कधे पर सिर रखकर झूमने लगी। उसने देखा बेटी उससे भी अधिक खूबसूरत लग रही है।

मन मे ईर्ष्या जाग गई। जब भी कोई उसकी बेटी के सौन्दर्य की तारीफ करता तो वह चिढ़ जाती। बेटी के प्रति व्यवहार ही बदल गया। जरा-जरा सी बात पर उसको डाटने लगती। धीरे-धीरे करके बेटी बड़ी

होने लगी। एक दिन दर्पण के सामने खडी हुई थी। उसने अपने बालो में एक सफेद बाल देखा। पास ही बेटी खड़ी थी, जिसके काले घने केश घटाओ की तरह से लहरा रहे थे। बेटी ने माँ से पूछा—क्या मैं सुन्दर लगती हूँ? क्रोध मे आकर रानी ने पत्थर दर्पण पर मारा और खीज उठी। वस्तुतः ईर्ष्या के कारण व्यक्ति अधा हो जाता है। वह अपने पराये का भेद भी भूल जाता है।

व्यक्ति सबसे अधिक ईर्ष्या अपने पड़ौसियों से करता है। पडौसी के घर मे कोई नई वस्तु आ जाये तो ईर्ष्या के कारण उसकी बुराई का बाजार गर्म हो जाता है। प्राय ईर्ष्या के वशीभूत लोग अपने पडौसियो का मजाक उडाते हैं और स्थान-स्थान पर उनकी बुराई करते हैं, जिसकी परिणति सम्बन्धो मे कटुता होती है।

एक बार कोई एक व्यक्ति बहुत उदास बैठा हुआ था। किसी ने उसे पूछा—क्या हुआ, दु खी क्यो हो? उसने जवाब दिया—आज मेरा पडौसी हस रहा है।

जरा कल्पना कीजिए—किसी के घर मे रंगीन टी० वी० आये तो पड़ौसी कहना शुरू कर देंगे कि इससे तो आंखे खराब होती हे। इसके कारण बच्चो की पढाई का विनाश होता है। रंगीन टी० वी० की बुराइयो का पूरा भाषण दे डालेंगे। अगर कोई पड़ौसी तारीफ कर देता है तो उसकी बात काटकर उसके अवगुणो का बखान देना शुरू कर देंगे। ईर्ष्या की आग हमारे सम्बन्ध की मिठास को खत्म कर देती है।

एक कवि की प्रसिद्ध काव्य पक्तियाँ याद आई हैं—

'उसे नही जलाया केरोसीन ने,
न ही गैस ने और न ही लकड़ी ने।
उसे जलाया ईर्ष्या की आग ने॥'

नारिया अपनी ईर्ष्यालु प्रवृत्ति के कारण संसार मे चर्चित हैं। एक नारी कभी दूसरी नारी के सौन्दर्य की तारीफ करते हुए नही देखी गई है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि तुलसीदास का कथन है—

'मोह न नारि नारि के रूपा।'

पति से यदि कोई सुन्दर स्त्री हसकर बात भी कर ले तो वह ईर्ष्या के कारण जल-भुनकर राख हो जाती है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि जैनेन्द्र जैन की इस सम्बन्ध में 'इनाम' कहानी याद आ रही रही है।

'एक किशोर अपनी क्लास मे प्रथम आने के बाद आता है तो मां के चेहरे पर वही खीज और गुस्सा पाता है। वह कहता है मां आज मैं कक्षा मे प्रथम आया हूँ। मुझे कोई इनाम दो ? मां गुस्से में कहती है, 'चल बैठकर पढाई कर अगली कक्षा की तैयारी कर ?' वह बालक जानता है कि मां के हृदय में पडौस की एक लडकी के बारे में ईर्ष्या की भावना बन रही है। पडौस की वह लडकी अक्सर मेरे लडके के पिता के पास पढ़ने के बहाने चली आती है। दोनों हंसकर बातें करते हैं और पत्नी इससे जल भुनकर रह जाती है। वह पति से साफ रूप से कुछ कह नही सकती, लेकिन उसके व्यवहार मे भारी परिवर्तन आ जाता है। जिसका दुष्फल पुत्र को सहना पडता है। ईर्ष्या के कारण उसने पिछले कई दिनों से माता-पिता को साथ बैठकर हसते हुए तक देखा नही था। शाम के समय वह पड़ौस की लड़की घर आई तो उसने लडके से कहा 'मैंने सुना है तुम प्रथम आये हो, बोलो तुम क्या इनाम चाहते हो ?' किशोर ने जवाब दिया—'अगर तुम मुझे सच-मुच इनाम देना चाहती हो आज के बाद हमारे घर कभी न आना।' यह कहानी हमे सकेत देती है कि ईर्ष्या के कारण सम्बन्धों में कितना बिखराव आ जाता है।

ईर्ष्या की स्थिति मुझे ऐसी प्रतीत होती है, जैसे बहुत तिलचट्टे एक सर्प के शरीर पर रेगने लगे। ईर्ष्या की अतिशयता व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक शकालु और कभी-कभी तो पागल भी बना देती है।

ईर्ष्या से व्यक्ति अविवेकी-कटुभाषी बन जाता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति के चेहरे पर जरा गौर करके देखिए—उसके माथे पर हमेशा लकीरे पड़ी रहेंगी और जरा-जरा सी बात पर वह वाणी से अंगारे की बरसात करते हुए मिलेगा।

ईर्ष्यालु व्यक्ति किसी के विकास को देखकर प्रमुदित होने की बजाय मन ही मन आहे भरने लगता है। उसकी निगाहे सद्गुणी के सद्गुणों पर नही अवगुणो पर होती हैं। कभी-कभी ही नही, अक्सर ईर्ष्या के रोग से ग्रस्त व्यक्ति ईर्ष्या से सप्रेरित बनकर सामने वाले मे कितनी ही अच्छाइयां क्यो न हो उन्हे नकार कर अवगुणो के ककर ढूंढ़ने की कोशिश करता है, भले ही अवगुण न हो, पर वह ईर्ष्यालु आरोप-प्रत्यारोप करने मे पलभर भी नहीं चूकता।

ईर्ष्यालु को गुणी के गुण, धनी का धन, यशस्वी का यश, सम्पन्न की सम्पन्नता, सुखी का सुख, स्वप्न मे भी सुन्दर नही लगता। पर ईर्ष्यालु को

यह कभी भी नही भूलना चाहिये कि इस घिनौनी वृत्ति से वह स्वय ही स्वय मे पैरो पर प्रहार कर रहा है।

ईर्ष्या के कारण जाति-कुल ऐश्वर्य-वल और रूप को पाकर भी वह हीन ही रहता है। वस्तुतः जिस अन्तर मे ईर्ष्या के अश है, वह धीरे-धीरे जलने वाली चिता के समान है।

कहा जा सकता है कि जलती हुई अग्नि को जल से शान्त किया जा सकता है लेकिन ईर्ष्या की अग्नि को सात-समुन्दरो के जल से भी शान्त कही किया जा सकता। ईर्ष्या एक ऐसी जजोर है, जिसमे बंधकर जीव दु खी होता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति उस दीपक के समान है जो हीरे-मोतियो से भी जडा होने पर स्नेह-रहित अर्थात् तेल शून्य होने के कारण किसी को उजाला नही दे सकता।

ईर्ष्याग्रस्त व्यक्ति एकदम असहज जीवन जीने वाला होता है। वह अन्तर में कुछ और तो वाहर मे कुछ और ही तरह का वन जाता है। इसीलिए वह निष्पाप नही होता और बिना निष्पाप हुए आत्मोत्कर्ष किसका सधा है।

आज व्यक्ति परिवार समाज राष्ट्र और संसार मे अशान्ति के पीछे ईर्ष्या का जहर हो प्रमुख कारण है। वस्तुत. जब तक व्यक्ति ईर्ष्या त्याग कर भगवान महावीर स्वामी के 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त को नहीं अपनाएगा तव तक ससार का उद्धार नही हो पायेगा। जब व्यक्ति दूसरो की मुस्कान के पास अपनी मुस्कान का नाता जोड़ेगा तव ही सृष्टि में सुख का आचल लहरायेगा। जयशकर प्रसाद की इन पक्तियो के साथ अपना कथन समाप्त करता हूँ—

औरो को हसते देखो मन-मन हंसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ॥

१३ | संगठन, श्रमणसंघ का मूल भाव

महानुभावो !

अभी अभी आपके सामने हमारी स्था जैन कान्फ्रेंस के अध्यक्ष श्रीयुत् लूंकडजी एव जोधपुर सभाग के अध्यक्ष मेड़तियाजी आदि ने श्रमण सघ के सम्बन्ध मे बहुत ही सुन्दर विचार रखे। सोच रहा हूँ कि मैं भी इस बारे मे कुछ चर्चा करू और प्रसगानुसार मुझे यह आवश्यक भी लग रहा है।

श्रमण सघ की मूल भावना, जुडन की रही है, संगठन की रही है। यह भावना ही श्रमण सघ को अस्तित्व मे लाने की मूल भावना है। निरंतर प्रयासो के द्वारा समाज की भावनाओ तो उत्स प्रदान किया गया। परस्पर जुडन को उस स्थिति मे एक अनिवार्यता माना गया। सबको यही लगा कि उसके बिना अब कोई मार्ग नही है। फिर भी श्रमण सघ का गठन एक विवशता नही, सामाजिको की उच्चतम भावना का सुपरिणाम है।

श्रमण सघ विच्छेदन पर एक विराम था। यह एक अन्तर जागृति थी। यह एक सर्वोच्च उपलब्धि थी। यह अनेक समस्याओ का एक निवारक तत्व था। यह एक व्यावहारिक कदम था। सहयोग के जो सूत्र जुड़े वे एक चमत्कार से कम नही थे। असम्भव को सम्भव कर दिया गया था। बाईस टोलों मे से अधिकाश के अधिपतियो द्वारा अपने नेतृत्व का बिना शर्त समर्पण वास्तव मे असम्भव ही था। पर वह सम्भव हो गया। श्रम सफल हुआ, चैतन्य का उदय हुआ, पारस्परिकता का एक अध्याय रच दिया गया।

यह एक ऐतिहासिक सरचना थी। कहते हैं कि आर्यावर्त के इतिहास में सादड़ी का बृहत् साधु सम्मेलन भगवान महावीर के निर्वाण के बाद पटना, पश्चात मथुरा और उसके बाद बल्लभीपुर (सौराष्ट्र) मे जैन साधु समाज के एकत्र होने के बाद की महान घटना है। अजमेर मे सवत १९९० मे एकत्रित हुए २२ स्थानकवासी जैन मुनियो ने पूर्व पीठिका तैयार कर दी

थी। अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कांफ्रेस के प्रयासो से कदम निरन्तर बढते गये। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण-सघ अस्तित्व मे आया।

जव इतनी श्रेष्ठ भावना थी और समाज की तत्परता थी तो फिर क्या कारण बने कि एक छतरी के नीचे इकट्ठे हुए विभिन्न श्रमण एक-एक कर विलग हो गये और छतरी का डण्डा केवल एक सबके हाथ मे ही रह गया। कारण कई हो सकते हैं, जैसे छतरी के नीचे आकर भी धूप या वर्षा से बचाव नही हो पा रहा हो या एक भीड के इकट्ठा होने पर किसी का पैर किसी अन्य का पैर कुचल रहा हो। मतलव यह कि अपने महत्व, अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति सहज न लगने पर विलगता को अवसर मिला हो। मेरे विचार मे इस जुडन में भावना तो अति श्रेष्ठ थी, किन्तु आकांक्षाओं की प्रतिपूर्ति मे थोडी जल्दबाजी हो गई। चाहिये जैसा अपनत्व प्रकट नही हो पाया। तेरा मेरा भाव पूरी तरह विलोप नही हो पाया। यह भी सम्भव है, कि कहीं कोई त्रुटियां किसी से हुई हो। परन्तु विश्वास एक ऐसा मरहम है कि वह वडे से वडे घाव को भी पूरा कर देता है। और यह विश्वास उपज नही पाया।

संसार सागर से तिरने के लिये समन्वय सबसे सार्थक उपाय है। मतभेद न बनने देना दूसरा उपाय है। विशिष्ट लक्ष्य धर्म प्रवृत्ति के हेतु से समर्पण भाव भी आवश्यक है। श्रेयार्थ के प्रति लगनपूर्वक प्रयास भी आवश्यक होता है। थोडा अन्तराल देकर सब कुछ सुनियोजित करके आगे बढा जाता तो अविश्वास की या टूटन की स्थिति नही आती। हर अस्वीकार प्रयत्नपूर्वक स्वीकार मे बदल जाना कोई वहुत वडी बात नही थी। पर असल मे हुआ यह कि जुडे हुए लोग आप अपने मे ही उलझ गये। वस्तुतः उनको अपने प्रति ही विश्वास नही रहा।

'एक आचाय के नेतृत्व मे एक सघ' कितनी महान उपलब्धि थी। व्यवस्थापकीय मन्त्रिमण्डल मे सवको प्रतिनिधित्व मिला। सवत्सरी आदि पर्व में मतैक्य न होने पर समाधान निकाले गये जैसे दो श्रावण हो तो भाद्रपद मे और दो भाद्रपद हो तो दूसरे भाद्रपद मे सवत्सरी मनाना। पाक्षिक तिथियो का निर्णय करने हेतु साधुओ की कमेटी, दीक्षा, प्रतिक्रमण, मुखवस्त्रिका, सचित्ताचित्त आदि सर्व विषयो पर खुलकर चिन्तन हुआ। सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास हुए। समाचारी को एक सर्वमान्य स्वरूप दिया गया।

इतना श्रेष्ठ स्वरूप भी शनैः शनैः विकृत करने का प्रयास होने लगा। व्यर्थ के दोषारोपण कर विलगता को सही ठहराया गया। समाधान सम्भव थे पर उनके प्रति तत्परता खत्म हो चुकी थी। कहां क्या त्रुटि रही, इस पर चिन्तन नही हुआ वरन् एकमात्र हल विलगता का ही रहा। एक बार विलग हो जाने के बाद अपने कथन को ही सही ठहराने के सतत् प्रयास ने सारा गुड-गोबर कर दिया, किन्तु फिर भी हर विखण्डन के बाद पुनः निर्माण की प्रक्रिया को भी अवसर मिलता ही है।

स्थितियाँ वही हैं जहां से सगठन की भावना उपजी थी। आज भी वैमनस्य भुलाकर हार्दिकता की आवश्यकता है। सूर्य के अवसान के बाद सूर्य का पुन उदय भी होता है। अपने दोष की सजा आने वाली पीढ़ी को न दी जाये। जुडन में जो अन्तराल अनचाहे आ गया है, उसे भूलकर नये सिरे से प्रयास हो सकते हैं। अपने ही मन की कारा से हमे मुक्त होकर खुले मन से पुनः अपनी असीम उपलब्धि को पुनर्स्थापित करने मे सलग्न होना चाहिये। कोई भी निर्णय थोपने की बजाय समाज हित को सर्वोपरि मानकर पूर्ण समर्पण भावना से जुडने की तत्परता हमे उस अतीत, उस महानतम उपलब्धि की ओर ले जा सकती है।

श्रमण संघ के विशाल रूप से भी अधिक अभी तो अवशिष्ट श्रमण सघ की एक्यता अधिक चिन्तनीय होने लगी है। अपने-अपने स्वार्थ के संपोषण की बजाय या घातक टीका टिप्पणी की बजाय प्रयत्न यह हो कि साधु-साध्वी ज्ञान, दर्शन, चारित्र की वृद्धि के लिये प्रयासशील हो। श्रमण संघ के विधान के अनुसार आत्म-शुद्धि के लिये श्रद्धा, प्ररूपणा मे एकता और चारित्र की शुद्धता एव वृद्धि करना तथा शिथिलाचार एव स्वच्छदा-चार को रोकना आवश्यक है।

यह निर्विवाद है कि श्रमण सघ मे विभेद रखकर स्थित होना अपने ही पांव पर कुल्हाडो मारने के समान है। सगठित होने से बढ़कर कोई युक्ति नहीं है। संगठन मे विखण्डन तभी सम्भव है जब एकजुटता, दृढता नहीं रह पाये। लकडी के गुथे हुये भारे को कोई नहीं तोड पाता। एक-एक लकडी के विलग होने पर ही विनाश होता है। जहां अविश्वास की स्थिति आती है वही पर विश्वास का भी अस्तित्व रहता है। अन्तर्मन कभी गलत अवधारणाओं को मान्य नही करता। हमे अपनी आत्मा की आवाज को ही प्राथमिकता देनी चाहिये और प्रमाद का परित्याग करना चाहिये।

श्रमणो से समाज को कई अपेक्षाए रहती हैं। समाज उनसे मार्गदर्शन

पाता है, उद्बोधन पाता है। प्रेरणा ग्रहण कर समाज अपने आत्मदीप को प्रदीप्त करता है। इन अपेक्षाओं की अवहेलना से मनुष्य की आस्था प्रभावित होती है। मैं नही सोचता कि हम श्रमण श्रद्धा व आस्था को खण्ड-खण्ड करने मे सुख अनुभव कर सकते हो। अप्रिय स्थिति को प्रिय बनाने की चुनौती हमे पुन. स्वीकारनी चाहिये। इसी मे धर्म का श्रेय है।

जिस अपूर्व त्याग का परिच्य देकर हम एकत्र हुए थे। इस त्याग भावना का परित्याग कर हम अपने को दयनीय ही तो बनायेंगे। अतः हमे इस घातक प्रवृत्ति को छोडकर सही रूप मे सादडी सम्मेलन की भावना जागृत करनी चाहिये। वह एक ऐसी आधार भूमि है जिस पर स्थित होकर ही दृढता व प्रशान्ति को अपना सकते हैं।

१४ | युवा वर्ग उन्नति का हेतु

महानुभावो !

युवा वर्ग समाज की रीढ है। रीढ की सुदृढता ही समाजरूपी शरीर का चैतन्य है। चैतन्य से परिपूर्ण समाज ही प्रगति पथ पर अग्रणी होता है।

युवा समाज की शक्ति है। शक्ति के दो परिणाम होते हैं। एक होता है सृजन और दूसरा होता है विध्वंस। शक्ति का सदुपयोग इसी में है कि वह सृजन को महत्व दे।

युवा वर्ग समाज का उत्साह है। श्रेष्ठता को पाने के लिए सतत उत्साहवर्धन जरूरी है। उत्साह सचेतना है। इसी के बल पर प्राणो में जागृति का शखनाद फूंका जा सकता है।

युवा वर्ग मानवता का पुरस्कार है। प्रत्येक पुरस्कार नई ऊर्जा का कारणभूत होता है। वह ऐसी सामर्थ्य नही रखता तो फिर उसके अस्तित्व मे रहने का कोई लाभ नही। अपने आप में निहित वैशिष्ट्य को युवा वर्ग जाने।

युवावर्ग से अनुरोध है कि वह अपनी ऊर्जा का सदुपयोग ऐसे रचनात्मक कार्यों में करे कि उससे मानव मात्र का कल्याण हो। मानव अपनी दयनीय अवस्थाओं से मुक्त होकर निरन्तर ऊर्ध्वता की ओर बढे।

युवा वर्ग एक प्रकाश स्तम्भ की तरह है जो स्वयं आलोकित होकर अन्यो को भी आलोक प्रदान करता है। आलोक की दशा मे दिशा का सही ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अन्धकारी वृत्तियो का निरसन हो जाता है।

युवावर्ग जिज्ञासु वर्ग है। वह अपने प्रश्न उठाता है और उसके समाधान चाहता है। नही मिलने पर खोजता है और खोज लेने पर उनके प्रति समर्पित होता है। इसलिए यह सोचना कि किसी भी कथन का युवा वर्ग अधानुकरण करेगा एक विभ्रम है। युवा वर्ग को सही समझ देने का दायित्व भद्र जनो का है, सत जनो का है। यदि वे युवावर्ग की इस कामना

की पूर्ति नही करते तो फिर उन्हें युवा वर्ग से कोई अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए।

यह एक श्रेष्ठ विचार है कि युवा वर्ग अपने दायित्वो में खरा उतरे किन्तु उसके लिए यह भी तो दायित्व बनता है कि युवा वर्ग को श्रेष्ठ वातावरण सौंपा जाए। दूषित वातावरण मे किसी से यह अपेक्षा करना कि वह खुली सांसो मे स्वस्थ विचार, स्वस्थ भावना को स्थान दे तो यह एक अपेक्षा से अधिक की चाह है। त्रुटिपूर्ण अपेक्षाएं स्थिति को दयनीय बना देती हैं। मैं सोचता हूँ कि युवा वर्ग से अपेक्षा तभी की जाय जब उसे पूर्ण रूप से सक्षम बनाया जाय। निरन्तर उसे विषमता की ओर धकेलकर समाज उससे श्रेष्ठता, उच्चता की अपेक्षा कैसे कर सकता है ?

युवा साथियो! उपरोक्त विवरण से मैं यह तो कह ही सकता हूँ कि आपके साथ कई सदर्भों मे ज्यादतियां हो जाती हैं। पर केवल इस तथ्य से आप विरोध की मुद्रा मे आयें, यह उचित नही। आपको इन ज्यादतियो के पीछे छुपे मूल भाव को जानना है। आपको नेतृत्व करना है। आपका नेतृत्व सही अर्थों में नेतृत्व हो, उसमे प्रदर्शन की गंध न हो। आपको परस्पर सम्पर्क मे उत्साह हो, चैतन्य हो, कल्याण की भावना हो। उस स्थिति मे समाज की हर इकाई, हर वर्ग आपका ही अनुकरण करेगा; और आप सही मार्ग पर चलेंगे तो वह समाज अवनति की ओर कभी नही जा सकता।

युवा साथियो! यह आवश्यक है कि आप सस्कारसम्पन्न हो। सस्कार न हो तो यौवन भटकता है। संस्कार बिना यौवन चन्द्र बिना रात के समान है। युवा अत्यन्त क्षमतावान होता है। जोश हो पर साथ ही होश भी हो। आवश्यक है कि युवा वर्ग अनुशासित हो। उद्दण्ड युवा अनादर के द्वारा अपना ही व्यवहार विकृत करता है। युवा सुपथ और कुपथ की परख करे और सुपथ को अपनाए।

युवा वर्ग से एक बडा अनुरोध यह है कि वह अपने आहार के प्रति सजग रहे। अशुद्ध आहार द्वारा वह समाज मे दूषण को स्थान न दे। आहार के दूषण का ही दुष्परिणाम है कि परस्पर प्रेम, सौहार्द का लोप हो रहा है।

समाज जो भी क्रान्ति लाना चाहे, जो भी परिवर्तन करना चाहे उसे युवा वर्ग के माध्यम से ही पूर्ण करे। युवा वर्ग ही ऐसा माध्यम है जो

सबलता से परिवर्तन ला सकता है। युवा को अपने कार्य की स्वतन्त्रता दी जाये। अंकुशरूप में अनुशासन हो। युवावर्ग को करणीय कार्य की विगत बता दी जाए और दायित्व सौंप दिए जाए तो वह कार्य को श्रेष्ठ रूप मे सम्पन्न करेगा। किन्तु यदि संशय करके उसे कार्य सौंपा जाए तो वह उसे ठीक से सम्पन्न नही कर पाएगा। कार्य की सम्पूर्ति विश्वास के आधार पर ही होती है।

उम्र का यह दौर इतराता है, इठलाता है, इसे संयमित करना अत्यन्त आवश्यक है। सयम से ही समर्पण भाव उदित होता है। समर्पण से ही पूर्ण तृप्ति मिलती है। यह उम्र जिज्ञासा की उम्र होती है। जिज्ञासा की पूर्ति से ही अभिव्यक्ति मुखर होती है। अभिव्यक्ति मे एक स्वर आकांक्षा का भी होता है। इन सबको यदि उचित राह मिले तो कई प्रकार के रचनात्मक कार्य सम्पन्न होते हैं, युवा शक्ति को सही आयाम मिलता है। हकीकत मे युवा की दृष्टि उस लोक मे टिकती है जिसकी कल्पना उसके अग्रज नहीं कर पाते। आने वाला युग नई स्फुरणा लिए होता है। उस स्फुरणा को झेल पाने का सामर्थ्य युवा में ही होता है। युवा वर्ग चैतन्य का अनन्य प्रतीक है। युवा वर्ग ही झझावातों से जूझ सकता है।

युवा साथियो! अपनी इस श्रेष्ठता को पहचानो और समाज की रीढ़ को अपनी सबलता की सौगात दो। एक अच्छा कार्य विकास का हेतु होता है। शुभ के प्रति निष्ठा जाग्रत करो और समर्पण भाव से शुभ से सलग्न होने को तत्पर हो जाओ। आज की इस प्रवचन सभा में समुपस्थित नौजवान साथियो से फिर कहना चाहता हूँ कि—

नौजवानो ! यह समय सोने का नही है,
नौजवानो ! यह समय रोने का नही है।
जमाने की निगाहे लगी हुई हैं तुम पर—
क्या काम है वह जो तुम से होने का नही है॥

इसी के साथ एक चतुष्पदी याद आ गई तो दे देता हूँ—

अब बुझती मशाल से नही, जलते चिराग से खेले,
धरा को धारण करने वाले शेषनाग से खेलें।
निगलना तो है ही, उगलना भी पडता है आग को—
आओ कोयलो से नही, अब दहकती आग से खेलें॥

१५ | बचो, काली नागिन से

महानुभावो !

नारी की परछाई से सांप भी अन्धा हो जाता है। जो पर-नारी के जाल में उलझ गया वह कभी मुक्त नही हो पाता है। पर-नारी एक ऐसी काई और दलदल है जिसमे फंसकर निकलना असम्भव है। एक वार विहार करते हुए विजयनगर पहुंचे तो वहा स्थानक की दीवार पर एक दोहा पढ़कर मन चिन्तन मे डूब गया —

जो सदगति चाहो जीव की, तो तज दो बातें चार।
पर-निन्दा पर-ईर्ष्या, पर-धन औ' पर-नार ॥

इससे पूर्व कि उस पर-स्त्री के ससर्ग से उत्पन्न परिणामो की चर्चा करें, संक्षेप में यह बतलाना आवश्यक समझता हूँ कि पर-स्त्री से तात्पर्य क्या है ? शास्त्रो के अनुसार पर-स्त्री वह है जिसका विधिवत पाणिग्रहण न हुआ हो। यदि विस्तार से सोचा जाये तो यह भी कहा जा सकता है कि स्व-पत्नी को छोड़कर शेष सभी पर-स्त्री के दायरे मे आती हैं। चाहे वो कुमारिकाएँ हो, सधवा हों, विधवा हो, वेश्या रखेल या दासी हो।

प्रश्न उठता है कि पर-स्त्री की ओर मन क्यो आकर्षित होता है। सम्भवतः इसका एक कारण विवाह के कुछ वर्ष बाद पारिवारिक सम्बन्धों में बासीपन आ जाना है।

अंग्रेजी की एक बहुत प्रसिद्ध उक्ति है जिसका भाव है—

विवाह एक ऐसे वाइलन की तरह है जिसमे संगीत खत्म हो जाता है पर तारों के साथ जुडो रहने की विवशता होती है। व्यक्ति एक वार जब सम्बन्धो के इस बासीपन के कारण पर-स्त्री की ओर आकर्षित होता है तो जीवन के सत्पथ से विचलित हो जाता है। वह एक बार उसके जाल मे उलझता है तो बुराई स्वय ही उसके पास चली आती है। वह उसके

वहलाव के लिये धन का दुरुपयोग करता है, मदिरापान की ओर परिवर्तित होता है और भी अनेक बुराइयो के शिकंजे में जकड जाता है।

परस्त्री कामजन्य विकृतियों को उत्पन्न करती है। आज ऐसी असाध्य बीमारियां उत्पन्न हो गई हैं जो पर-स्त्री के साथ काम सम्बन्धों की ही देन हैं। इसके कारण मन मे अस्थिरता और मलिनता उत्पन्न होती है। कुत्सित विचार मन मे, कुसंस्कार के रूप मे जम जाते हैं। ऐसे अनेक रोगों के सम्बन्धो मे जकडे जाकर अपने दैनिक कर्तव्य क्रमो आदि को छोड देता है। अपकीर्ति का भागी बनता है। परस्त्रीगामी की दशा तो मैले व्यक्ति को भी मात देने वाली होती है, मैला व्यक्ति केवल वाहर से ही मैला होता है, सदाचारशून्य व्यक्ति के मन, वचन, नयन सव कुछ विकृत होते हैं। मलिन विचार लिये ऐसा मनुष्य सद् आचार से विचलित हो जाता है। अवसर-कुअवसर अपने गन्दे भावो को नि:संकोच प्रकट कर देता है। वह रही-सही शर्म को ताक में रख देता है।

कई स्त्रियां पुरुषों को अपने जाल मे उलझाकर उनसे अपने अनेक स्वार्थ भी साध लेती हैं। ऐसी स्त्रियां पुरुष को अपने इशारे पर नचाती हैं। जयशंकर प्रसाद के अनुसार पुरुष कहता है 'क' से 'कमल' तो स्त्री कहती है 'क' से 'कौआ' और पुरुष उसे रटने लगता है। अतः पुरुष स्त्री का गुलाम हो जाता है। ऐसी स्त्री के साथ प्रणय-लीला करना सर्पिणी के साथ खेलने के समान है जो कभी भी डक मारकर मृत्यु के निकट ले जाती है।

कभी-कभी अप्राप्य स्त्री को प्राप्त करने के लिये मनुष्य पापपूर्ण मार्ग पर भी चल पडता है। वह किसी की हत्या तक करने से नही रुक पाता। राक्षस के जितने भी गुण हैं, सभी उसमे घर कर जाते हैं। वह हित-अहित, कीर्ति-अपकीर्ति सव कुछ भुलाकर पर-स्त्री को पाने के लिए हर सम्भव चेष्टा करता है।

पर-स्त्रीसेवन पाप है। हमारे आगम ग्रन्थ स्पष्ट कहते हैं कि पर-स्त्रीग्रस्त व्यक्ति धर्म मर्यादाओ को ताक मे रखकर हिंसा, असत्य, चोरी, अपहरण, परिग्रह, व्यभिचार आदि मे गहरा उलझ जाता है, और इसके कारण वहुधा राग-द्वेष, वैर विरोध इतने अधिक वढ़ जाते हैं कि कुल के कुल नष्ट हो जाते हैं।

अभी कुछ दिन पहले समाचार-पत्र मे पढ़ा था। एक कामी पर-स्त्री के जाल मे उलझकर सब कुछ भूल गया। उसने उसे पाने के लिए उसके

भाई का खून कर दिया। अन्ततः पकडा गया और उसे जेल मे जाना पड़ा।

सामाजिक अपयश का दंश सबसे अधिक विकल करता है। एक व्यक्ति जो स्वच्छ पवित्र की जिन्दगी जीता है, जिसके सामने सभी सम्मान से सिर झुकाते हैं, लेकिन जब उसके पथभ्रष्ट हो जाने की चर्चा चारो तरफ होने लगती है तो वह कही मुख दिखाने के काबिल नही रह जाता। अपयश से आत्मा का अन्त होता है और शरीर जिन्दा रहता है।

मनुस्मृति ने कहा है—'दुराचारी पुरुप लोक मे निंदित होते हैं। वे सदा दुःखी रोग-ग्रस्त एव अल्पायु होते हैं। इस ससार मे पुरुष का आयुष्य बल क्षीण करने वाला ऐसा कोई भी कार्य नही है जैसा कि पर-स्त्री-सेवन।'

कबीर ने कामिनी को काटने वाली बिल्ली की सज्ञा देते हुये कहा है—

कामणि मीन्नीं सादिकी, जे छेड़ो तो खाइ।
जे हरि चरणा राचिया, तिनके निकट न जाइ॥

अर्थात् कामिनी काटने वाली बिल्ली है। अगर इसे छेड़ो तो खा जाती है अर्थात् जो कामिनी से विषय-भोग के इशारे एव हास-परिहास करता है, उसको कामिनी वासनाएँ उद्दीप्त करके एव भोगो मे डालकर नष्ट कर देती है। पर जो भगवान् के चरणो मे अनुरक्त है, वे इस कामिनी-रूपी बिल्ली को छेडते ही नही, उनके यह निकट भी नही जाती। यह स्वय भी उनसे भयभीत रहती है।

पर-स्त्री योग साधना में भी बाधक है। मनुष्य जैसी सगत मे रहता है वैसा ही हो जाता है। स्वाति नक्षत्र की बूंद केले मे गिरकर कपूर हो जाती है, सीप मे मोती बन जाती है और काले नाग के मुह मे गिरकर विष बन जाती है। पर-स्त्री के जाल मे उलझना भयकर विषधर के अधीन हो जाना है। भर्तृहरि ने कामिनी के जाल मे उलझे व्यक्ति को क्रोधी कहा है।

कामी पुरुषो और कामिनियो के संसर्ग से पुरुष कामी हो जाता है तथा आगे के जन्म मे भी क्रोधी, लोभी और मोही होता है। काम-क्रोध और मोह के कारण मन अशुचिमय हो जाता है और अशुचि मन मे ईश्वर का उदय नही होता।

महात्मा कबीर ने नारी के दुष्प्रभाव का अत्यधिक मार्मिक और सटीक वर्णन किया है।

कतिपय दोहे दृष्टव्य हैं—

नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजे दौर।
देखत ही ते विष चढ़े, मन आवे कछु और ॥
जहाँ काम तहा राम नहिं, राम तहा नहिं काम।
दोउ कबहू ना रहे, काम राम इक ठाम ॥

स्त्री को घूर कर न देखना चाहिए और देखकर उसके पीछे न लगना चाहिए, क्योकि स्त्री को देखने मात्र से ही जहर चढ़ जाता है और मन और ही तरह का हो जाता है।

पर-स्त्री के इतने दोष गिनाने के बावजूद भी यदि कोई इस दिशा मे प्रवृत होता है तो वह उस मूर्ख के समान है जो अपने ही पैरो पर कुल्हाड़ी मारता है। वह उस कुत्ते के समान है जो अपने ही खून को चूसता है और आनन्द हड्डी मे समझता है।

आज जब हर शहर मे 'एड्स' जैसी कई भयकर बीमारियां बरसाती कुकुरमुत्तो की तरह बढ रही हैं। यह आवश्यक हो जाता है कि हम इस बीमारी से अपने आपको दूर रखने की कोशिश करें।

नारी के प्रति मन मे आदर श्रद्धाभाव तभी जन्म लेगा यदि हम उसमे मा-बहन आदि को खोजने का प्रयास करें। जैसे ही किसी नारी को देखकर हमारे मन मे यह भाव जागेगा वासना का काला सर्प फन फैला ही नही सकेगा। वस्तुतः ससार मे सबसे बडा शूरवीर वही है जो पर-स्त्री के काम बाणो से पीड़ित नही है। वही व्यक्ति धीर और समदर्शी बनकर संयम के पथ पर आगे बढ़ पाने मे सक्षम होगा।

१६ | आओ, प्रकृति की तरफ लौटें

महानुभावो !

मनुष्य क्रमशः प्रकृति से दूर पत्थरो के बीच कैद होता जा रहा है। वो समय बीत गया जब आख खुलते ही खिडकी के बाहर प्राकृतिक सौंदर्य आमन्त्रित करता प्रतीत होता था। वृक्षो की ठडी हवाओ, फूलो की महक, तितलियो के रगो आदि से उत्पन्न आनद को व्यक्ति विस्मृत करता जा रहा है। गगनचुम्बी इमारतो के बीच मे वह पिंजरे मे किसी पक्षी सा कैद हो गया है। उसे चारो तरफ धुए से भरे वातावरण मे सांस लेनी पड रही है। यह धुआं जो बडी-बडी फैक्ट्रियो, मोटर गाडियो आदि से निकलता है, धीरे-धीरे इन्सान के दिल-दिमाग, आंख और उसकी चेतना में जमता चला जा रहा है।

आज के व्यक्ति को देखकर उस दर्पण की याद आती है, जिस पर परत दर परत इतनी धूल जम गई है कि अब अक्स तक दिखाई नही देता। जैसे धूल भरे दर्पण मे व्यक्ति अपने आपको नही पहचान पाता है, उसी प्रकार जब व्यक्ति प्रकृति से दूर चला जाता है, वह अपने आपको नही पहचान नही पाता। महानगरों मे लोग सवेरे सूरज निकलने सेले कर सध्या के रात के अन्धेरे मे ही लीन हो जाने तक किसी मशीन की तरह काम करते है। सुबह उठते ही कोई अपने दफ्तर जाता है तो कोई दुकान तो कोई फैक्ट्री मे जम जाता है। सारा दिन फाइलो, मशीनो मे सिर खपाने के बाद घर लौटकर सो जाता है, न बच्चो से प्यार, न पत्नी से कोई बात-चीत, न कही कोई परी की कहानी, न कोई धर्म की शिक्षा।

इस व्यस्तता की भीड के बीच सब कुछ खो गया है। इस युग मे किसी शिशु से पूछिये—प्राची दिशा मे सूरज कैसा लगता है, वो मौन रह जायेगा, क्योकि सबेरे उठते ही कानो मे टेलीविजन के कार्यक्रम गूजने लगते हैं। वह फूलो को सिर्फ तस्वीरो मे देखता है। धीरे-धीरे अपने आस-

पास आती-जाती धूल मे वह अनभिज्ञ रहता है। उससे पक्षियो के बारे मे पूछिये, सिर्फ वह उनके नामो की चर्चा करेगा। कहा गया वो बचपन जो कबूतरो, चिडियाओ के पीछे भागता था। आज तो बचपन नौकरानी की थपकी से सोया है। वो धूप मे चीखा-चिल्लाया है, वो किसी की पहचान के लिए रोया है, लेकिन कोई उसके पास नही आया है। मनुष्य जितना प्रकृति से दूर होता है, वह उतना ही जीवन की सच्चाई, प्रेम, आत्मीयता आदि से दूर हो जाता है। जब तक उसके पास कुदरती प्रकृति थी, उसकी स्थिति उस फटी हुई लोई के समान थी जो फटी होने पर भी अपने रंग से दूर नही होती है।

आज इन्सान के शरीर पर रेशमी कपडे है, लेकिन स्वार्थों के कांटो से बिंधकर, भावहीनता को झोपडियो मे लिपटकर तार-तार हो गए हैं। उनका रग तेज धूप मे कही उड गया है। जब तक इन्सान कुदरत के पास था, उसकी स्थिति मिट्टी से बनी हुई उस सुराई के समान थी जिसमे पानी ठण्डा, सुगन्धित और निर्मल रहता है। जिस व्यक्ति के पास अनन्य सम्पदाये आ गई उसकी स्थिति एक ऐसे कलश के समान हो रही है, जिस मे मदिरा भरी हुई है।

प्रकृति से अलग होकर मनुष्य अहकार मे डूब गया है। प्रकृति हमे सिखाती है, एक दूसरे से प्रेम करना, एक दूसरे के लिए जीना। ससार में जितनी सुनियोजित प्रकृति है, उतना कोई अन्य रूप नही है।

प्रिय श्रोताओ! कृत्रिमता की कारा से अपने आपको मुक्त करो। आखें बन्द करके शहरो की तरफ मत भागो। खिड़की से बाहर किसी वृक्ष की शाखा को देखो। परिन्दों के सगीत को सुनो, बर्फ के ठण्डे पानी से दूर, सुनो झरने की कल-कल क्या कहती है?

प्रकृति की गोद मे तुम्हे मां का प्यार मिलेगा। उसकी छाया में जीवन-संगी के आचल की ठण्डक मिलेगी, कांटो से जीवन के सघर्षो के बीच रहकर फूलो की तरह मुस्काने का सन्देश मिलेगा।

अग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक आसकटर वाईल्ट की कहानी मुझे याद आती है। इसमे लेखक ने कुदरत की भावुकता को जिस ढग से अभिव्यक्त किया है उसके सामने मनुष्य की आखें झुक जाती हैं।

एक प्रेमी इसलिए उदास था क्योकि उसकी प्रेमिका ने कहा कि तुम्हारे साथ तब नाचूगी जब मुझे 'सुर्ख-गुलाब' लाकर दोगे। प्रेमी को कही सुर्ख गुलाब नही मिला और वह उदास हो गया। एक बुलबुल ने जब

उसकी उदासी का कारण जाना तो उसकी आखो मे अश्रु छलक आए। उसने कहा—'तुम उदास न हो दोस्त, मैं तुम्हे सुर्ख गुलाब लाकर दूगी।'

बुलबुल ने चारो तरफ सुर्ख-गुलाब को तलाश किया लेकिन असफल रही। अन्त मे वह एक सूखे पौधे के पास गई जो सुर्ख गुलाब का था। पौधे ने कहा यदि तुम मुझे अपना रक्त दो तभी सुर्ख-गुलाब का आना सम्भव है। बुलबुल ने सोचा प्यार जिन्दगी से अधिक कीमती है। अतः एक काटे पर बैठ गई। ज्यो-ज्यों रक्त कण छलकते गये, पखुडियां खिलती गयी और जब हृदय के रक्त की अन्तिम बूंद गिरी तो गुलाब पूरी तरह सुर्ख हो गया।

प्रेमी आया। गुलाब को तोडकर अपनी प्रेमिका के पास ले गया। लेकिन प्रेमिका ने कहा—यह मेरी ड्रेस से मेल नही खाता, मुझे तो किसी ने हीरे के आभूषण दिये हैं, मैं तो उसी के साथ नाचूंगी। प्रेमी का दिल टूट गया। उसने सुर्ख-गुलाब को सडक पर फेंक दिया।

यह कहानी मुझे व्यक्ति और प्रकृति की याद दिलाती है। आज इन्सान प्रकृति की कोमलता को पहचान नही पा रहा है। प्रकृति जो हमे अपने रक्त से जीवन देती है, हम उसे पैरो के नीचे कुचल देते हैं।

साधु-सन्त प्रकृति के बहुत निकट होते हैं। विहार करते समय पगडण्डियो, वृक्षो, सूर्योदय और सूर्यास्त की अरुणिमा से उनका गहरा नाता जुड जाता है। सम्भवतः इसलिए उनका मन कमल की पखुड़ियों पर ओस की बूदो की तरह ताजा, झरने की तरह निर्मल और पवन की तरह उन्मुक्त होता है।

अपने अन्दर अनुभूतियो के बने हुए सुरम्य-सुरभित सुमनो से समृद्ध उपवन को पहचानो, उसे पत्थरो के बीच दबने मत दो। दूर आकाश मे उड़ते हुए पक्षियों को देखो और सीखो वह कितनी दूर का सफर कितनी आसानी से तय कर लेते हैं। मधु-मक्खियो से कला सीखो। तितलियो से भावनाओ के रग-बिरगी रूप को जीना सीखो। मत भागो शहरो की तरफ, मत भागो लोहे की मशीनो के पीछे। मत बांधो पलको से वासनाओ के भारी पत्थर। रुको, प्रकृति तुम्हे पुकार रही है। तुम बहुत थक गये हो, आओ इसकी गोद मे सिर रखकर विश्राम करो। यह मां बनकर तुम्हे लोरी सुनाएगी और तुम्हारी थकान दूर कर देगी।

किसी कवि ने कहा है—

> प्रकृति की प्ररणाए सुन तेरा आह्वान करती।
> सुप्त मानव की समझ मे जागृति का ज्ञान भरती॥

१७

श्रेष्ठताओं से पहले हम स्वयं जुड़ें

महानुभावो !

जो अमृत धारा अन्दर से झरकर संसार की रूक्षता को दूर करती थी, आज कहीं दिखाई नहीं देती। व्यक्ति, परिवार, संघ, समाज, देश और सृष्टि के बीच के सारे सम्बन्ध बिखराव की दिशा में हैं। निरन्तर तेजी से बढते हुए वैपरीत्य एव वैषम्य तथा जीवन को जीवन के ढंग से जिये जाने वाली जीवन्त निर्दोष शैली मे घुल आये विविध दोषो के विष को दूर करने/कराने के लिए आये दिन उपदेश के नाम पर बहुत-सा शोर आता है पर मन की सतह से उडते हुए खो जाता है।

कई बार विचार कौंध-सा जाता है कि संघ, संगठन, समाज सुधार, संस्कृति सुरक्षा, आध्यात्मिक अभ्युदय आदि के बारे मे लेखन, प्रवचन, सम्मेलन, अधिवेशन, चर्चा और गोष्ठियो एव प्रतियोगिताओ मे बहुत कुछ कहा सुना जाने के बावजूद ये सारे प्रयत्न चतुर्दिक व्याप्त विसंगतियो को दूर करने मे सहायक सिद्ध क्यो नही होते ? आखिर क्या कारण है ? हर नारा खोखला, हर उपदेश का स्वर बेमानी सा क्यो लगता है ? मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हूँ कि जो बात अन्तर के आचार एव अनुभव की गहराई से जन्म नही लेती वह शीघ्र ही बन्द दीवारो से टकरा कर खो जाती है।

व्यक्ति को चाहिये कि वह सृष्टि को जगाने का संकल्प करने से पूर्व स्वय को जगाये तभी जागृति का शखनाद जन-जन तक पहुचेगा। यदि मनुष्य समष्टि मे परिवर्तन लाना चाहता है तो सबसे पहले उसे अपने आपको बदलना होगा। उसे उपलब्धि की ऊंचाई तक पहुँचने से पूर्व अपने तुच्छ अहकार का परित्याग करना होगा। वातावरण मे श्रेष्ठताओ की स्थापना एव प्रसार तभी सम्भव है कि श्रेष्ठताओ को व्यक्ति पहले स्वयं अपने जीवन मे प्रामाणिकता के साथ जिये। व्याप्त सघन तमस को प्रज्व-लित दीप ही चीरता है, बुझा हुआ दीप कभी भी नही।

आज सुधार के नाम पर अनेक झण्डे गली-मोहल्लो मे लहराते हुये दिखाई देते हैं। सुधार का दम भरने वाले व्यक्ति दुनिया को चौकाने वाली आदर्शो की कुछ वातें कहकर अल्प अवधि के लिए प्रभावित जरूर कर लेते हैं लेकिन स्थाई रूप से प्रभाव नही छोड़ पाते।

भगवान महावीर दीक्षित होने के वाद लगातार साढ़े वारह वर्ष तक निरन्तर मौन रहे, जव तक अन्तर से अपने आपको पूर्णत जगाकर स्वय को आलोक मण्डित नही कर लिया, दुनिया को जगाने के लिए एक शब्द तक प्रकट नही किया। जगा हुआ ही सोए हुए को जगा सकता है, स्वयं जो सुषुप्त है दूसरो को कैसे जगा पायेगा ? सुधारक के कथन मे प्रभाव तभी उत्पन्न हो सकता है जव वात कण्ठ से नही, आचरण से उत्पन्न होती हो।

प्रसिद्ध कहावत है—

'मन जीते जग जीता।'

अर्थात् दुनिया को जीतना चाहते हो तो पहले मन को जीतो। मन पर जो राग द्वेष की धुन्ध छाई है, इसे मिटाओ। स्वच्छ मन से ही हम स्वस्थ चिन्तन कर सकते हैं।

एक कवि का कथन है—

अरे सुधारक जगत को, मत कर चिन्ता यार।
तेरा मन ही जगत है, पहले इसे सुधार॥

एक वड़ा महत्वपूर्ण सूत्र है—

'अप्प दीपो भव।'

अर्थात् अपने दीपक आप स्वयं वनो। दूसरो को उजाला देने से पूर्व स्वय को आलोक मण्डित वनना आवश्यक होता है। वचपन मे सुनी एक कहानी याद आ रही है।

एक वच्चे को गुड़ खाने की वहुत आदत थी। उसकी मां उससे परेशान थी। एक दिन वह उसका कान पकडकर उसके गुरु के पास ले गई और कहा 'महाराज, इसे कहो कि यह गुड़ नही खाये।' गुरु ने एक पल के लिए सोचा और कहा सात दिन के वाद आना। सातवें दिन के वाद मां पुनः वेटे को लेकर गुरु के पास आई। गुरु ने वहुत प्यार से कहा 'वत्स! गुड खाना छोड दो।' वालक ने गुड खाना छोड दिया। माँ ने गुरु से प्रश्न किया, महाराज आपने यह वात सात दिन पहले क्यो नही कही थी ? गुरु ने उत्तर दिया 'तव मैं भी गुड खाता था। गुरु को अपने शिष्य को वही

कहने का अधिकार है, जिसका वह स्वय पालन करता हो।' आज सारी दुनिया गुड खाने के रोग से त्रस्त है। हर गली गाव और शहर में धर्म गुरु उपदेश दे रहे हैं कि गुड नही खाओ लेकिन यह आदत छूटती नही। कारण कि सब गुरु गुड से मक्खी की तरह चिपटे हुए हैं।

मैं यह महसूस करता हूँ कि मनुष्य यदि सृष्टि को बदलना चाहता है तो सबसे पहले अपने आपको बदले। यदि सभी अपने आपको बदलने के लिये सकल्प कर उसे व्यावहारिक दृष्टि से चरितार्थ करने का प्रयास करेंगे तो वो दिन दूर नही होगा जब समय के चेहरे पर पड़ा काला आंचल, काला पर्दा हट जायगा और एक नई सुबह मुसकायेगी। कहा भी है किसी ने—

व्यक्ति मे हो परिवर्तन तो, युग परिवर्तित हो सकता है।
मानव यदि जग जाये तो, वह पाप कालिमा धो सकता है॥

१८ | सम्प्रदाय, धर्म को पूर्णता दें

महानुभावो !

अभी-अभी आपके सामने धर्म और सम्प्रदाय के बारे में चर्चा चल रही थी। धर्म और सम्प्रदाय में दिन रात का अन्तर है। दोनों को एक समझना भारी भूल है। धर्म जोडने का काम करता है। विस्तार से इस सम्बन्ध मे कुछ कहने का मन है पर घडी में समय काफी हो गया है, सक्षिप्त में ही आज कुछ विचार दे रहा हूँ। जोधपुर वाले प्रबुद्ध हैं। जरूर चिंतन करेंगे।

सम्प्रदाय, धर्म मे ही निहित एक उपक्रम है। विशाल भाव भूमि में एक छोटा सा खण्ड होता है सम्प्रदाय। वह एक विशाल उपक्रम की ही एक छोटी सी इकाई है। किन्तु यह एक विडम्बना है कि इसे ही धर्म का पूर्ण स्वरूप माना जाने लगा है। इतना कि कहा जाने लगा कि धर्म का यही स्वरूप वास्तविक है, बाकी सब पाखण्ड है। धर्म की विशुद्धता से जन-जन को मोडा जाने लगा। फलस्वरूप एक विखण्डन व विद्वेष की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। माला का एक मनका भला पूरी माला का सम्बोधन कैसे पा सकता है, और कैसे वह गले को शोभा बन सकता है ?

यह अणु स्वरूप और इसका विखडन अणुबम से भी अधिक विनाशक हो गया है। स्वयं अपने ही विनाश की प्रक्रिया में जुट गया है, मानव की यह प्रवृत्ति घातक है, मानव जाति के लिए मारणान्तक है। फिर भी मनुष्य इसको पोषण देता है, स्वयं अपने ही द्वारा शोषित होता है। मानव मात्र के लिए यह सघातक है, पर सर्वत्र ही यही प्रश्रय पा रहा है। अपने लघु रूप में जो उपयोगी था, वह अपनी ही उपयोगिता खो रहा है। उदार स्वरूप वाला सम्प्रदाय माननीय है, उसे अपनाने से धर्म को बल मिलता है। किन्तु सम्प्रदाय ने सकुचितता को प्रश्रय दिया।

भगवान महावीर ने श्रुतधर्म, चारित्रधर्म अस्तिकायधर्म, इन शाश्वत

तत्वो की व्याख्या शाश्वत धर्म के माध्यम से की है। इसके अलावा सामाजिक धर्मों मे उन्होने ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म, कुल धर्म, गण धर्म, संघ धर्म आदि वतलाए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि तीर्थंकरो द्वारा प्रतिवोधित जिन धर्म एक असकीर्ण धर्म है। यह प्राणीमात्र का धर्म है। जैन धर्म मे वर्णित पच परमेष्ठी भी सपूर्ण विश्व के अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु की परिगणना मे आते हैं।

खेद का विषय है कि इतनी समग्रता को लिए हुए धर्म को सम्प्रदायों, उपसम्प्रदायो मे वांटकर अपनी-अपनी ढपली, अपना-अपना राग अलापा जा रहा है। सम्प्रदाय निश्चय ही एक विभाजन है, पर मूलत. वह एक इकाई ही है। पर साम्प्रदायिक रूढ़ता इतनी वलशाली हो गई है कि मनुष्य को एक सीमित दायरे के वाहर कुछ दिखाई ही नही देता। वह अपनी समूची ऊर्जा उसी के अस्तित्व को वनाये रखने मे नष्ट कर देता है। सम्प्रदाय का अस्तित्व वनाए रखना और उसे और-और गहरा रंग देते चले जाना स्वय मनुष्य के लिए कितना घातक है। वह इस तथ्य को भला समझता क्यो नही? सम्प्रदाय की आवश्यकता है पर धर्म के स्वरूप को विकृत करने के लिए नही, उसे सुसस्कृत स्वरूप देने के लिए।

अगणित मतो वाली भारत भूमि मे संतो-महात्माओ ने मूल कथनों को व्याख्यायित किया, किन्तु इस व्याख्या प्रक्रिया मे उन्होने सुविजनो की प्रकृति व प्रवृत्ति के अनुसार कुछ शब्द भेद किये हैं। मूल अवधारणाए तो वही रही। उन अवधारणाओं की सौरभ भी वही थी, उनकी पावनता भी वही थी। उनका मर्म भी वही था। जागृति का शंखनाद तो सवने किया। पर शंख की ध्वनि मे फर्क आ गया। परिणाम यह हुआ कि लोग कथनो की सीमितता में ही जाने-अजाने समग्रता खोजने लगे। लोगो की इस व्यग्रता ने उन्हें सकुचित वना दिया।

अलग-अलग अवधारणाओ या कथनो के कारण लोग सशयग्रस्त हो गये। धर्म के वास्तविक मार्ग से वे फिसल गये। शुद्ध धर्मवुद्धि का लोप हो गया। धार्मिक उत्थान का स्थान अवनति ने ले लिया। सम्पूर्ण लोक का प्रकाश वुझ गया। अन्धकार का कोहरा सर्वत्र छा गया। सस्कार विहीनता आ गई। धर्म मे दूषण का प्रवेश हो गया। धर्म के प्रति प्रतिवद्धता की अवहेलना होने लगी। धर्म सार्थकता खोने लगा। आत्मजयी जैन धर्म आत्मा के हनन में प्रवृत्त होने लगा। मिथ्यात्व के दोष से भवीजन युक्त हो गये।

सम्प्रदाय जो अस्तित्व मे आये थे एक सुभावना को लेकर। वे दुर्भावना से युक्त होकर परस्पर उलझ गये। इस उलझाव मे मनुष्य अपनी प्रगति को दुर्गति मे बदलने लगा। उसकी ऊर्ध्वता मे सेंध लग गई। वह अधोमार्गी हो गया। सम्प्रदाय पुष्ट हो, बढने मे सलग्न हो पर उनका यह बढ़ना नदी की धारा के समान हो, अन्त मे जो विशाल समुद्र मे विलीन हो जाती है। इस हार्द को यदि समझा जाए तो सम्प्रदाय अपने पर लगे कलक से मुक्त हो जाएगा। वह एक वहुत ऊंचाई तक ले जाने वाली सीढी का एक सोपान हो जायेगा।

छोटे-छोटे विवादो मे उलझकर सकुचितता अपनाना उस जल धारा के समान है, जो कभी भी समुद्र में नही मिलती। दुनिया में तमाशबीनो की कमी नही है, वे परस्पर के झगडो को और बढाने के लिये हवा देते रहते हैं। प्रस्तुत विवेचन मे मैंने धर्म की या सम्प्रदाय की व्याख्या करने का उद्देश्य नहीं रखा। सर्व जन इन दो स्वरूपो को जानते हैं, पर जब वे इन दोनो को परस्पर एक साथ खडा देखते हैं तो न जाने क्यो वे सम्प्रदाय को महत्व देना प्रारम्भ कर देते हैं। आज जिन्हे भी धर्म का विवाद या सघर्ष कहा जा रहा है, वास्तव मे वे धर्म के नही सम्प्रदायो के विवाद या सघर्ष हैं। श्रेष्ठ यही है कि सम्प्रदाय को धर्म का पूरक माना जायें। समय यद्यपि काफी हो चुका है पर कुछ पक्तियां आप तक पहुचाने के लिए मन बार-बार ललक रहा है—

कच्चे दिमागो में जहर भरने की कोशिश न करें,
मजहब की पागल लहर भरने की कोशिश न करें।
यह दिमाग जैसे फूलो से महकता हुआ चमन—
इसमें एक गंदा शहर भरने की कोशिस न करें॥

इसी के साथ चार लाइने आपको और देकर अगली आवश्यक घोषणा के लिए आपके सघ मत्री जी को सकेत कर देता हूँ—

जीवन मे आए ठहराव को तोड़ना जरूरी है।
एक सूरजमुखी घुमाव मे अपने को मोडना जरूरी है।
सडने लगा पोखर मे ठहरा हुआ पानी—
उसे अब एक नए वहाव से जोडना जरूरी है॥
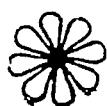
१६ | हर कोई आलोचना का अधिकारी नहीं होता

महानुभावो !

इन दिनो एक वडी तुच्छ प्रवृत्ति हर क्षेत्र मे चल रही है और धर्म का क्षेत्र भी उससे अछूता नही है। वह वृत्ति है—अपनी हीनता को औरों पर आरोपित करना। सीधे सहज स्वरूप मे पत्थर फेंक कर विखण्डन करना। इस प्रवृत्ति से किसी को भी लाभ होता हो, ऐसा नही लगता। यह केवल अपने ही दभ से वशीभूत कुछेक व्यक्तियो द्वारा उछाला जाने वाला शगूफा है। जिनमे निर्माण की सामर्थ्य नही होती वे विध्वंस को ही अपना सुख मानते हैं और विध्वंस कभी भी अच्छी नजर से नही देखा जा सकता।

वे महानुभाव अपने लिए भी उलझन पैदा कर लेते हैं और, औरों को तो उददेश्यपूर्णता से उलझाते ही है। वे सर्वत्र असतोष की अवस्थिति मे संलग्न होते हैं। वे स्वय नही जानते कि उनकी इस प्रवृत्ति से किसको कितनी हानि पहुँच रही है। वे अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए आसपास ही मंडराते रहते हैं और तीक्ष्ण वाग्बाणो या क्रिया-कलाप मे व्यस्त रहते हैं। एक तरह से वे नाकेबंदी कर सहज विकास को रोकते हैं। वे स्पष्ट बयानी के नाम पर अनर्गल रूप से शोले उछालते रहते हैं।

आलोचक यदि स्वस्थ आलोचना नही करते हैं तो निश्चय रूप से विघ्नसतोषी होते हैं। व दोधारी तलवार की तरह कार्य करते हैं। वे संतो को सार्वजनिक रूप से तो उछालते ही हैं, कभी गुमनाम रहकर वे जगह-जगह संघीय साधु, साध्वियो के वावत नमक-मिर्च लगाकर बातें करते हैं। ऐसे घिनौने कृत्य में निमग्न लोगो से सजग रहना अत्यावश्यक है। सार्वजनिक रूप से संत किसी के सगे सम्बन्धी नही होते पर आत्म जागरण या प्ररणा प्रदान करने के सन्दर्भ मे उनसे अधिक कोई सगा नही होता। यह नही भूलना चाहिए कि पुत्र, पत्नी, माता, पिता सभी मात्र इस जन्म के साथी हैं पर धर्म शाश्वत साथी है और सन्त जन धर्म का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

ऐसे शुभ निष्ठ व्यक्तित्व को अपने अनुरूप या अनुकूल न पाकर कई व्यक्ति उसके प्रति अन्य भाव रखने लगते है और प्रथम अप्रत्यक्ष रूप फिर प्रत्यक्ष रूप मे उनके प्रति अनादर या सशय भाव रखने लगते हैं। मतलब सधने पर ही खामोश रहते हैं। साधुपने मे त्याग का महत्त्व है पर उन्हे तरह-तरह के प्रलोभन या उनके अह की जागृति कर कई व्यक्ति उन्हें अपने अनुरूप करने का प्रयास करते हैं। कभी कभी बार-बार के प्रयास मे वे थोड़ा सफल भी हो जाते हैं। बस उसी क्षण वे डका पीट पीट कर अपनी इस जरासी उपलब्धि को बहुत बढा चढ़ा कर व्यक्त करते हैं। जो सत्य नही है उसे झूठ से रेखांकित कर सत्य के रूप मे प्रस्तुत करते हैं।

आलोचना मे यदि इतनी ही रुचि है तो अपनी आलोचना करनी चाहिए। ताकि अपनी त्रुटियाँ दूर हो। अपनी आलोचना स्वत अपने आप ही होती है। इसलिए इसमे अन्यो को जोडा जाना आवश्यक नहीं है। यह आलोचना मनुष्य को हीनत्व से भी उबारती ह। अपनी आलोचना से तात्पर्य है अपने आप मे सजगता का समावेश। इसमे किंचित मात्र भी आवेश नही होता। यह तो एक प्रकार से आत्म परीक्षण है, आत्म विशुद्धि है।

अपने को देखते-देखते आदमी औरो के प्रति आलोचना की दृष्टि को भी छोड देता है। वह स्थितिजन्य विवशताओ को भी समझने लगता है।

अपनी आलोचना से आत्मा पर पड़े आवरण छिटक जाते हैं। स्वय की आलोचना अन्तस् को झकझोर देती है जबकि अन्यो की आलोचना अन्तस् को विकृत कर देती है। अपनी आलोचना से सारे तनावो से राहत मिलती है साथ ही सहनशीलता की अभिवृद्धि होती है। अपनी आलोचना साहस है जबकि औरो की आलोचना दुस्साहस। अपनी आलोचना प्रशान्ति सौंपती है, औरो की आलोचना तूफान ला देती है। हर प्रकार की त्रासदी से मुक्त करता है आत्म-निरीक्षण। वह सभी उन्मादो से परे करता है।

अपनी आलोचना प्रायश्चित्त है जबकि औरो की आलोचना निन्दा है। औरो की आलोचना पर-परिवाद नामक पाप है। औरो की आलोचना करने वाले अपनी आत्मा को कर्मों से भारी बनाते हैं। अन्य के दोषो की आलोचना आत्मा के लिए अभिशाप है। गौतम ने महाशतक रेवती की आलोचना की। भगवान महावीर के आदेश के अनुसार रेवती के यहाँ जाकर प्रायश्चित्त किया। यदि उन्होने पर की आलोचना का प्रायश्चित्त

न किया होता तो वे विराधक वन जाते। अन्य की आलोचना करने की वजाय श्रेयस्कर है कि स्वयं समत्व में, अपने आप में स्थिर रहे। गहराई से चिन्तन करे कि मैं स्वयं कहां पर खडा हूं। मैं कैसा जीवन जी रहा हूं। किसी कवि ने कहा है—

कुछ लोग कहते हैं कि वह ऐसा और वह ऐसा है,
न उसकी इज्जत है और न उसके पास पैसा है।
जो ऐसा वोलते है मैं पूछता हूं उनसे—
आपका स्वभाव और चरित्र कैसा है ?

आलोचना की प्रवृत्ति से मन में अस्थिरता का उदय होता है। मन की स्थिरता, प्रशान्ति केवल अपने को निरपेक्ष रखने में होती है। आलोचना के इस वचन का मतलब यह नही कि अन्याय को भी सहा जाए पर अन्याय की आलोचना की वजाय अवहेलना का तरीका अधिक कारगर हो सकता है। जिसकी आप आलोचना करना चाहते हैं उसके प्रति अवहेलना भाव रखेंगे तो जिस अहं से वह ग्रस्त हुआ है उसकी ओर उसे देखने-सोचने को विवश होना पड़ेगा और वह स्वत ही धुरी पर स्थिर हो जाएगा। ऐसे मे उसका विरोध या आलोचना की जरूरत ही नहीं रह जायेगी और कार्य सम्पन्न हो जायेगा।

क्रिया यदि होगी तो उसकी प्रतिक्रिया भी होगी ही, पर यदि क्रिया ही अवहेलना से युक्त होगी तो प्रतिक्रिया मे भी कोई विशेष दम नहीं होगा। किसी को भी धुरी पर स्थापित करने के अन्य भी कई तरीके हैं। पर ऐसा होना है कि अक्सर लोग आलोचना करने मे ही अपनी श्रेष्ठता मानने लगते हैं। मानते हैं कि वे इसके द्वारा समाज की वहुत वड़ी भलाई कर रहे है।

विघ्नसन्तोषी लोगो की रुचि अपने आपको स्थापित करने की होती है। भले ही वे उस स्थापना के योग्य हो अथवा नही। अपनी न्यूनता को छुपाने के लिए ही तो वे अन्यो पर दोषारोपण करते हैं।

कहा भी है—

अपनी प्यास छिपाने के लिए आदमी पानी पिया करता है।
अपनी मौत को छिपाने के लिए हर सांस जिया करता है।
एक राज की वात है सुनो अगर साथियो—
अपनी भूलो को छिपाने के लिए औरो की आलोचना किया करता है॥

श्रोताओ ! आलोचक लोग ठीक वैसे ही होते हैं जैसे खुद पकडा न जाए इसलिए स्वयं चोर ही चिल्लाने लगता है—चोर ··· चोर। ये लोग किसी पर छींटाकशी कर यही समझते हैं कि उन्होंने बहुत बडा तीर मार लिया है जबकि उन्होने अपने पैरों के नीचे स्थित जमीन का भी परित्याग कर दिया होता है।

मेरे कहने का अभिप्राय यह कतई नही है कि दोषों को प्रश्रय दें या किसी मे भी कोई स्खलना भूल आदि देखें तो हम कुछ कहे ही नही। बात यह है कि कहने का भी एक तरीका है। जिससे सम्बन्धित जो बात है उसी से मिलकर समाधान किया जाय कि वस्तुस्थिति क्या है। कई बार सुनी सुनाई बातो से बडा अनर्थ हो जाता है। सन्त भगवन्तो के श्री मुख से एक बार मैंने सुना था—

कानों सुनी सच नहीं, आँखों देखी सच ।
आंखो देखी सच नही, निर्णय कीनी सच ।।

कानो से सुनी बातो का क्या है, कई बार आंखों देखी भी मिथ्या सिद्ध होती है। हर बात का निर्णय सर्वोपरि है।

आजकल प्रायः एक दुष्प्रवृत्ति भी चल पड़ी है कि किसी से कुछ विचार-भेद हो गया, या स्वय की कसौटी पर खरा नहीं उतरा अथवा स्वयं की बात को सामने वाले ने कभी महत्व नही दिया या स्वार्थों को सामने वाले न कभी महत्व नही दिया या स्वार्थों की सम्पूर्ति न हुई तो उसे जैसा भी, जी मे आया उसी तरह से उछाल दिया जाता है। ईर्ष्या पूर्ण दृष्टिकोण एवं साम्प्रदायिक मनोवृत्ति लेकर जिस तरह से साधु साध्वी-वृन्द एवं सघ समाज पर प्रत्यक्ष में या प्रच्छन्न रहकर गुमनाम से कीचड़ उछाला जाता है एकदम निम्नस्तरीय एवं रुग्ण दृष्टिकोण है। स्वाध्यायी महानुभाव जानते हैं कि अवर्णवाद से दर्शन मोहनीय का बध होता है।

जीवन उत्कर्ष के लिए हमे स्वस्थ दृष्टिकोण लेकर चलना चाहिए। स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ वातावरण का निर्माण करता है। जो स्वस्थ वातावरण की सराहना करता है वही स्वस्थ आलोचना का अधिकार पाता है। अत. आलोचना वही करे जो उसका अधिकारी हो। क्योंकि उसकी आलोचना खण्डनात्मक नही, मण्डनात्मक होगी। स्वस्थ वातावरण मे स्वतः ही अनुशासन सध जाता है।

पुनः मैं कहना चाहूँगा कि स्वस्थ चिन्तन अथवा स्वस्थ आलोचना से समाज का लाभ है किन्तु विघ्नसन्तोषी व्यक्ति की आलोचना दृष्टि से समाज पिछड जाता है जो पात्र आदर का है उसे भर्त्सना देने के पूर्व पूरी तौर से आगे-पीछे सोचना जरूरी है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि महान व्यक्ति होते नहीं, वातावरण उन्हे महान बना देता है। इस कथन का तात्पर्य यही है कि शुभ भाव के परिणाम भी शुभ होते हैं। जिसकी प्रवृत्ति झींकने की होती है वह जिन्दगी भर झींकता ही रह जाता है। इस तथ्य से परिचय पाकर विसंगतियों से बचा जा सकता है, बचाया जा सकता है।

अपने ऐबों पर नजर कर अपने दिल को पाक कर।
क्या हुआ गर खल्क मे तू, पारसा मशहूर है॥

२० वर्तमान, सबसे महान

महानुभावो !

आज अधिकांश मनुष्यो की चिंता और दु खों का कारण खोजने पर मुझे लगा है कि उनकी चिंता और दु खो का कारण वर्तमान से कटाव है। मैंने देखा है—मनुष्य या तो बीते हुए कल में खोया हुआ है या फिर आने वाला कल मेरे लिए कैमा होगा इस चिंता से परेशान है। इसे हम यू भी कह सकते हैं या तो मनुष्य स्मृतियो से जुडा हुआ है या फिर अभिलाषाओ से।

सरलता से इसे यूं समझ लीजिए या तो उनके पास यादें हैं या इच्छाएं। याद अतीत का संदर्भ है तो इच्छा भविष्य का सकेत है। विगत और आगत मनुष्य की चिंता का विषय है लेकिन मनुष्य के चिंतन का विषय 'आज' अर्थात वर्तमान होना चाहिए।

हम वर्तमान के बारे मे कम जागृत है इसीलिए उलझनो और परेशानियो का अम्बार है। वर्तमान से कटकर जीना दरअसल कोई जीना नही है। अपने वर्तमान को शक्ति भर जो सकने वाला मनुष्य ही सही माने मे जीवन जीता है।

डा. विश्वास पाटील ने लिखा है—'आज पर मनुष्य का चिंतन केन्द्रित हो जाय तो उसकी चिन्ताए मिटने की सघन सभावना है। 'आज' सेतु है। मनुष्य की चेतना के ऊर्ध्वारोहण के लिए उसका आज सुरक्षित होना चाहिए। 'आज' बलशाली होना चाहिए।

कई लोगो को मैंने देखा है उनसे जब भी, जहा भी मिले, वे अपने भले बुरे अतीत को स्मृति में उभार उभार कर बोझिल बनते रहते हैं। रात दिन, क्षण क्षण चौबीस घटे अपने दिल दिमाग मे चिंताओ का भार

लेकर चलना 'महत्वपूर्ण' से वंचित होना है। चलते हैं तो चिंता है, बैठते हैं तो चिंता है, कुछ खाते हैं तो चिंता है, कमाते हैं तो चिंता है, जगते हैं तो चिंता है और बिस्तर पर जाकर सोते हैं तो चिंता है। चिंताओं से जो ग्रस्त है उसे आराम से नीद बसे आती ही कब है ? पर नीद आ भी गई और सपना भी यदि ले रहे है तो उसमें भी चिंता है, वजन है, पीडा है, परेशानी है। किसी ने कहा है—

> यह भी कोई जिंदगी है, गम की मारी जिंदगी।
> चीखती रोती बिलखती, बिलबिलाती जिंदगी।।

कई व्यक्ति इसलिए भी वर्तमान मे अपनी आंखों से दिन रात आंसुओं की बरसात करते रहते हैं कि हमारा बीता हुआ कल कितना अच्छा था। हम कितने सुखी थे, आनंदित थे किसी तरह का अभाव और विपन्नता नही थी पर 'आज' हमारे पास मे कुछ भी नही है। हमारा वह सुखद समय न जाने क्यो चला गया ? मैं आपसे कहना चाहता हूँ आप जरा जवाब दें क्या आपके चिंता करने से, रोने से, आहे भरने से या बार बार मन मस्तिष्क को बोझिल बनाने से क्या बीता हुआ समय लौट सकता है ? भूत. भूत हो चुका है। अतीत-व्यतीत हो चुका है उसे कितने ही इंजेक्शन दें वह जीवित होने वाला नही है। फिर क्यो सोच सोच कर अपना दिमाग भारी करते हैं।

किसी कवि ने एक छोटी-सी गीतिका मे कितनी मननीय बात कही है—

> अब सोच करे तो होना क्या
> बीत गया सो बीत गया अब बीते हुए को रोना क्या ?
> जब जब याद करोगे कहानी।
> तब तब आँखों मे आएगा पानी।।
> तेज घटेगा, शक्ति घटेगी, आंसू से मुह को धोना क्या ··

याद रखिए, जीवन का सच्चा, शाश्वत आनन्द वर्तमान में ही प्रकट होता है, भूत और भविष्य में नही। क्योंकि भूत मर चुका है और भविष्य का अभी जन्म ही नही हुआ है। अतीत की बातें हो सकती हैं और भविष्य को सुन्दर बनाने के स्वप्न देखे जा सकते हैं पर उसमें जिया नहीं जा सकता।

हम कभी विगत में दौडते हैं और कभी आगत मे, किन्तु वर्तमान जो हमारे सामने है उसे यदि हम नकार देते हैं तो हम भारी भूल कर रहे हैं।

किसी विचारक ने कहा है—वर्तमानेन कालेन, वर्तयन्ति ये विचक्षणा अर्थात् जो वर्तमान के प्रति सजग है वही विचक्षण है। बार-बार ज्ञानियो ने सजग करते हुए कहा है कि बीता हुआ कल अच्छा था तो भी उसे भूल जाओ। यदि आप चिंताग्रस्त बनकर उसी मे खोए रहे तो, जीवन की अमूल्य निधि को कभी भी हस्तगत नहीं कर सकोगे।

एक बार मैं एक पुस्तक पढ रहा था किसी एक विचारक की इन पक्तियो ने मेरे मन को बहुत ही प्रेरित एव प्रभावित किया, उपयोगी होने से आप तक पहुंचा रहा हूँ—'मनुष्य के भाग्य का एक द्वार बद होता है तो उसी क्षण दूसरा द्वार खुल जाता है किन्तु वह इतना अभागा है कि बन्द द्वार के सामने ही सिर पटकता है। खुले द्वार को देखता ही नही है। यदि एक बार वह आंखे उठाकर देख ले तो उसके जीवन मे फिर से वसन्त की बहार आ सकती है, कभी भी नही मुरझाने वाले सुखो के सुरभित सुमन उसकी जीवन बगिया मे खिल सकते हैं। वह जीवन का सच्चा विजेता बन सकता है।'

दु ख हो, चाहे सुख हर परिस्थिति मे एक बात को हम सोचें कि दु ख है तो इसका भी स्वागत और सुख है तो इसका भी स्वागत। दोनो मे स्थायित्व नहीं है। दु ख को भी आखिर जाना है और सुख है तो इसको भी जाना है। समभाव के साथ, अविचल धर्य के साथ मुझे इन्हे सहना है। सहना मुझे ही है फिर किसी को कहना और न कहना क्या अर्थ रखता है? न मैं सुख मे फूलूंगा और न दुःख मे अपने आपको भूलूगा। मेरा है वह कभी जा नही सकता और जो जाता है वह मेरा नही। सचमुच, आप महसूस करेंगे, अपने भीतर बहुत बडी शक्ति को। पर यह तभी कि हम अनावश्यक विकल्पो के चक्रव्यूह से अपने आपको निकाल पाये तो। अपने आपको हम चिंता से नही चिंतन से जोड़े, व्यथा से नही अपितु व्यवस्था से जोड़े।

चिन्ताओ से आसुओ से ही यदि समस्या का समाधान है तो उसमें भी लाभ है पर ऐसा नही है। आज तक रोने से आप स्वय सोचिए किसको राज्य मिला है?

किसी ने लिखा है—

रोने से दुःख दूर नही होने का।
आसू से पत्थर चूर नही होने का।
जीवन भर चाहे कुकुम से पूजो—
काला काजल सिंदूर नही होने का।

इसी तरह से कुछ लोगो की मनोवृत्ति होती है उनके पास यदि हम देखें तो ढेर सारी अभिलाषाओ, एव कल्पनाओ की भरमार होती है। आज जो हाथ मे ह उसके प्रति एकदम गैर जिम्मेदार ! एकदम उपेक्षा से परिपूर्ण दृष्टि। एक दम अकर्मण्य। भविष्य मे मैं ऐसा करू ंगा, यह करू गा वह करू ंगा।

वेकार की ऐसी कल्पनाओ की उडान कि जिनका कोई सिर पैर हो नही है। किसी तरह का धरातल, या कार्यक्रम सवल और स्पष्ट नहीं। हर काम को कल पर टालने की मनोवृत्ति। सेवा करनी है तो कल करेंगे। प्रवचन सुनना है तो कल सुनेंगे। दान देना है तो कल करेंगे। तप करना है तो कल करेंगे। जप करना है तो कल करेंगे। हर वात मे कल। कल-कल करते हुए स्वय भी वेकल और दूसरे भी वेकल। दरअसल उनका कल आता ही नही है। यह कल-कल का स्वर उन्हे यू कहूं कि बुरी तरह से छल जाता है।

कितनी अच्छी हैं ये पक्तियाँ—
कल कल करने वाले कल का, वोल अंत कव होगा कल का।
सोचता है तो वडी दूर की सांस का भरोसा नहीं पल का।
कल पर जो काम छोडे होते न कभी पूरे,
कहते हैं कि रावण के कई काम हैं अधूरे ...
करना जो आज करले, कल आए या ना आए।
कल के भरोसे वैठा, वैठा ही न रह जाय...

काफी कुछ कह दिया है, और काफी कुछ कहा जा सकता है पर समय की अपनी एक मर्यादा है ! घड़ी की सूई आगे वढ रही है। आप भी निरंतर आगे वढिए पर याद रखिए, तभी आप वढ पाएंगे जव वीते हुए कल और आने वाले कल की चिंता से अपने आपको मुक्त वनाएगे। चितन जरूर करें। चितन चमक पैदा करता है पर चिंता कभी भूलकर भी न

करें। चिंता सारी चमक को नष्ट कर देती है। चिंता से ज्यादा खतरनाक है यह चिंता। चिता मुर्दे को जलाती है जबकि चिंता जीवित को ही नष्ट कर देती है।

एक शायर ने कभी कहा था—

जिदगी जिदादिली का नाम है
मुर्दा दिल क्या खाक जिया करते हैं।

वर्तमान को सुधारो। भविष्य अपने आप सुधर जायगा। कुछ लोग भविष्य को सुधारने संवारने की चिंता मे वर्तमान को बिगाड डालते हैं। कल की चिंता कल के दु खो को तो दूर नही करती किन्तु आज की शक्ति, क्षमता, विवेक और आनन्द को नष्ट कर देती है।

एक बार मैंने लिखा था—

अब क्या होगा, अब क्या होगा, कहने वाले घबराते हैं।
मरना आने से पहले ही, बेचारे मर भी जाते है॥
जो होगा सो होगा, पहले चिंता करने से क्या होगा?
वर्तमान का स्वागत करलो, यूं ही डरने से क्या होगा?
स्वस्थ प्रशस्त चित्त रहने दो—
सभी जानते हैं जीवन मे, बहुत बार सकट आते हैं॥

२१ | प्यार क्या कर सकेगा भगवान को

महानुभावो !

आतकवाद का काला साया देश के उजाले को चीरता जा रहा है। जहां दृष्टि उठाओ खून के छीटे पड़े दिखाई देते हैं। छोटे-छोटे बच्चों की दूध की बोतल खून से सनी है। युवा विधवाएँ अपनी मांग में दुर्भाग्य की खाक उडती हुई महसूस कर रही है, सामूहिक हत्याएँ हो रही हैं और नेताओ को इन समस्याओ के समाधान करने की परवाह नही है। सभी बस, निरीह लोगों की मौत पर शाब्दिक सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं। अभी कुछ दिनो पहले की बात है, पजाब मे कुछ आतककारियो ने पटियाला के दूरदर्शन अपर स्टेशन इन्जीनियर एम०एल० मनचन्दा का अपहरण करके नौ दिन बाद हत्या कर दी। उसका सिर कटा, शव पटियाला जिले के शम्भू कस्बे मे पाया गया जबकि सिर अम्बाला छावनी के एक व्यस्त चौराहे पर पाया गया।

देश हिंसा की आग मे धू-धू जल रहा है। नई पीढी मे आत्मदाह की होड़ सी लग रही है। पूरे वातावरण को लकवा मार गया है। सभी धर्म नेता पूजा-पाठो और उपदेशो मे लगे हैं। राज नेता सियासत की गोटियां बिठाने में लगे हैं। जैसे हम एक हृदयहीन समाज-संरचना मे लगे हैं।

एक बोझ, एक दर्द, एक गुनाह का अहसास भीतर-भीतर निरन्तर होता रहता है। मन में आता है—

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिये।
इस हिमालय से कोई गगा निकलनी चाहिये।

सब बेमानी हैं। धर्म के ये बड़े-बड़े उपदेश, विपुल दान से खड़े होने

वाले विशालकाय धर्मस्थान, मन्दिर, अगर हम आदमी को इन्सान नही वना सके, अगर हम इस हिंसा के उफान एव राष्ट्रीय विखडन के तूफान को न रोक सके।

कई वार मन मे विचार कौंधते हैं—

जाने कहा जायेगा,
यह सारा देश !
मानवो की वस्ती में,
हो गया है,
हैवानों का प्रवेश !

और कुछ कहने को जी कर रहा है—

आदमी ने इस दुनियां मे
वहुत कुछ किया
वहुत कुछ करना जानता है।
लेकिन, दु ख इस वात का
आज, आदमी आदमी को
नही पहचानता है।

आखिर इन्सान पिशाच क्यो वना और क्यो उसने धार्मिक ग्रन्थ पढ अपने हाथ मे वन्दूक उठाली और अपने भाइयों की सरे आम हत्या करना शुरू कर दिया।

शायद उसका प्रमुख कारण आजादी के वाद भारत में उत्पन्न हुई वोटो की राजनीति तो है ही, साथ ही तीव्र गति से समाज मे पनप रही असवेदनशीलता भी है।

मुझे इगलैण्ड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री वालपूल का कथन याद आता है—

'कुत्तो की हड्डियो के लिए लड़ाई।'

आज इस देश मे यही कुछ तो हो रहा है, सत्ता की हड्डी को पाने के लिए सभी जोर अजमाइश कर रहे हैं। जव डाकू-लुटेरे आतकवादी अपहरणकर्त्ता चुनाव लड़े तो देश की स्थिति क्या होगी ? इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

आज स्थिति यह है कि जिस दरवाजे पर दस्तक दो, स्वागत के लिए हाथ नही, अपितु खजर निकलता है। यह खंजर नफरत के लहू से भरा हुआ है। लोगो के दिलों में प्यार का संगीत सूख गया है, सभी एक-दूसरे की हसी को नोच लेना चाहते हैं। धर्म, सिर्फ किताबों में बन्द होकर रह गया है।

सत्पुरुषों का विशेष दायित्व है कि लोगो को याद दिलाए कि—

"प्यार ही पूजा है।"

जीना चाहते हो तो एक-दूसरे से प्यार करना सीखो। जीवन मे प्रेम नही होगा तो जिन्दगी शमसान होगी। कबीर ने फक्कड़पन मे कितनी बडी बात कही थी—जिसके हृदय मे प्रेम उत्पन्न नही होता, वह हृदय शमसान के समान है।

किसी कवि ने कहा भी है—

प्यार क्या कर सकेगा भगवान को,
प्यार क्या कर सकेगा ईमान को।
जन्म लेकर गोद मे इन्सान की—
प्यार कर पाया न जो इन्सान को॥

आज समस्याओ का अम्बार बढता जा रहा है। इसका कारण स्पष्ट रूप से यही है कि प्रेम, सहृदयता, दया, सहनशीलता, समता आदि मूल्य नष्ट हो रहे हैं। इन्सान का दिल किसी बजर धरती की तरह होता जा रहा है, जहा सद्भावना के फूल नही खिलते।

हर शहर के गली-चौराहो पर लाशें जल रहीं हैं, हर दरवाजे पर टूटी हुई चूडिया पड़ी हैं, हर बच्चे की आख मे आसू लगता है, हर सुबह आज उदास है, हर शाम शमसानी है। ऐसे में हमे आकर सच्चे मन से प्यार और सद्भावना का पाठ पढाए तो वह इन्सान के रूप में देवता होगा।

श्रोताओ! इतने निष्ठुर मत बनो। दूसरो के दु:ख दर्द को बाटना सीखो। अपने दु:ख के कारण तुम्हारी आख से जो आसू जन्म लेता है, वह सिर्फ पत्थर होता है, लेकिन जो आंसू किसी दूसरे के दुःख के कारण जन्म लेता है, वह मोती होता है। जिस दिन तुम्हारे दिल की जमीन में सवेद-

नाओं के सुमन खिलेंगे, उसी दिन चारो तरफ समस्याओ से लहू-लुहान हुआ काला आचल सरकेगा और सूरज अपनी सुनहरी सुखद धूप फैलाएगा।

एक बार लिखा था—

आदमी यदि आदमी से,
करे निःस्वार्थ होकर प्यार।
स्वर्ग फिर क्या दूर
उस पर हो जाये,
मनुज का अधिकार ॥

२२ | चाह गयी, चिंता गयी

महानुभावो !

आज प्रातः स्वाध्याय के क्षणो में एक महत्वपूर्ण गाथा पर चिन्तन केन्द्रित हो गया। सोचता हूं, यदि इसके भावों पर चिन्तन करके मानव तदनुसार जीवन जीने के लिए अपने आपको तैयार करे तो वह दुःखों के सैलाब से बेशक अपने आपको बचा सकता है।

परम मंगलमय परमात्मा भगवान महावीर के चरणों में आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व जब पूछा गया कि अन्तर बाह्य दुःखो का उन्मूलन करने की सुगम पद्धति क्या है ? तो प्रभु ने फरमाया—

'कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं।'

कामनाओं पर कन्ट्रोल करलो, निश्चित रूप से दुःखो से अपने आपको बचा लोगे।

बहुत बडी बात है कामनाओ पर विजय प्राप्त कर लेना। कामना, इच्छा, चाह, तृष्णा कुछ भी कहो बात एक ही है। अनावश्यक चाहों से मन ग्रस्त होता है तो वह सत्रस्त बन जाता है। हमारे यहाँ के सन्तो ने बड़ी गहरी बात कही है—

चाह चमारी चूहड़ी, सब नीचन तें नीच।
तू तो पूर्णब्रह्म था, जो चाह न होती बीच॥

उपरोक्त दोहे मे चाह को चमारी कहा गया है और चमारी मे चमड़ा पहचानने की विशेषता है। अतः चाह चमडी से यारी करती है इस कारण वह नीच से नीच है। जहां नीचन तें नीच चमारी बैठी है वहां पर परमात्मा कैसे रहेगा ? किसी ने कहा भी है—

एक दिल लाखो तमन्ना, उस पर भी ज्यादा हविश।
अब कहो कहां पर जगह, उसको बिठाने के लिए॥

हां तो मैं जो दोहा अभी इस शेर के पहले आपके सामने रख चुका हूं उसमें इस चाह को चूहडी भी कहा गया है जो अच्छी से अच्छी वस्तु को नष्ट कर देती है। जहां भी यह रहेगी कि साधक की समग्र साधना आराधना को चाह रूपी चूहडी कुतर-कुतर कर समाप्त कर देगी। भौतिक चाह की आह से ग्रस्त होकर शान्ति को प्राप्त करने की अभीप्सा आकाश कुसुमवत् है। किसी ने कितना अच्छा लिखा है—

जो चाहते हो पहलू में बैठे दिलरुवा।
पहलू को चीर दिल की जगह उसको बिठादो॥

गीता मे भी शान्ति को संप्राप्त करने के जो चार मार्ग बताए हैं। उनमे सबसे पहली बात है सभी तरह की कामनाओ का परित्याग। कामनाओ के परित्याग के बिना शान्ति कहां है? कामनाओ मे शान्ति नही, अशान्ति है। सुख नही, दुःख है। और-और का अन्त बोलो कहां है?

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमाश्चरति निस्पृह।
निर्ममो, निरहकार स शातिमधिगच्छति॥

परिग्रह परिमाण व्रत की व्यवस्था जो है इसीलिए तो है कि अनावश्यक से अपने आपको अलग-थलग करें। अनावश्यक के पीछे भागना जबर्दस्त रूप से अपने आपको तनावग्रस्त बनाना है। अनावश्यक कामनाओ के जाल मे जो कैद हैं उनसे पूछिए—प्रतिदिन नींद के लिए नीद की गोलियां खानी पडती हैं।

एक प्रसिद्ध दोहा है—

चाह गई चिन्ता गई, मनुवा बेपरवाह।
जा को कछु ना चाहिए, सो शाहों का शाह॥

वस्तुत चाह ही तो ससार है। चाह ही बधन है और जहां बन्धन है, वही क्रन्दन है। मुस्कान बन्धन मे नही, मुक्ति मे है। मुक्ति की युक्तिया हमारे सामने हैं पर ध्यान दिए बिना समाधान कहा है? कई बार मैं कहा करता हूं—

भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम।
अब जो नफरत हमने को तो बेकरार आने को है॥

इसी तरह की दो पक्तियां हैं जो मुझे काफी अच्छी लगती हैं—

जब से हटी है ख्वाहिश, फूलो को सूंघने की।
सारे जहां के गुलशन, मेरे ही हो गए हैं।

एक बार भीतर के स्तर पर सन्तोष से जुडकर कामना विजय का अभ्यास प्रारम्भ कीजिए। पूरा जीवन उल्लास से महक-महक उठेगा। मन में अनावश्यक कामनाओं का अम्बार लेकर व्यक्ति घरबार, परिवार एवं संसार को छोडकर एकान्त में जाकर वर्षों तक ध्यानस्थ बनकर क्यों न बैठ जाए, उसे कभी भी दीदार हो नही सकता। चाम, दाम और नाम, कामना कैसी भी हो उसे मन में संजोकर चलने वाला व्यक्ति दुनिया की नजर में कितना ही उत्कृष्ट जीवन क्यो न बिता रहा हो पर भीतर से उसकी स्थिति सचमुच बड़ी बुरी रहती है—

अगर दिल गिरफ्तार है मखमलो में,
तो खिलवत भी बाजार से कम नही है।
अगर तेरे दिल को है यक सूई हासिल,
तू अंजुमन मे भी खिलवतनशी है ॥

अर्थात् अगर मन पुत्रैषणा, लोकैषणा, वित्तैषणा सांसारिक तृष्णाओं, कामनाओ और इच्छाओ से भरा है तो एकान्त भी बाजार से कम नही है और यदि मन ने कामनाओं पर विजय प्राप्त करके एकाग्रता प्राप्त करली है तो वह महफिल या भीड में रहकर भी अलग एकाग्र ही रहता है। बोलते हो न आप 'एगंत सुही साहू वीयरागी' वीतराग भाव में रमण करने वाला कामनाओं को जीतने वाला साधक ही इस संसार में सुखी है।

उत्तराध्ययन सूत्र में वर्णित कपिल के कथानक से आप परिचित हैं। दो मासा स्वर्ण की कामना लेकर चलने वाला कपिल सम्पूर्ण राज्य को मांगने की कामना तक पहुँच जाने के बावजूद भीतरी स्तर पर दुःख की अनुभूति करता रहा पर ज्यों ही कामना से आन्तरिक सम्बन्ध विच्छेद किया सम्पूर्ण कष्टो को भेद दिया।

आप भी कामनाओं के दल-दल में फसे मन को निकालने का यदि अभ्यास कर सकें तो निश्चित रूप से तनाव मुक्त बन सकेंगे।

❀

२३ | समग्र समस्याओं का मूल मन में है

महानुभावो !

अभी आपके सामने हमारे मुनिश्री मन के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे थे। सचमुच मनुष्य के पास मन सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है । कहा भी तो है—"मन एव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयो" अर्थात् मन ही बंधन एवं मुक्ति का कारण है।

जीवन मे विविध समस्याओं को जन्म भी यह मन देता है और उनका समाधान भी मन ही करता है। मन से भिन्न न कोई समस्या है और न कहीं समाधान है। एक बार किसी कवि की दो पंक्तियाँ कही मैंने पढ़ी थी—

तन से होने वाला सब कुछ, पहले मन में पलता है।
मन आगे है तन तो उसके, पीछे-पीछे चलता है ॥

इसी आशय की एक चतुष्पदी है—

कुछ लोग कहते हैं जो कुछ है वह इस धन में है,
कुछ लोग कहते हैं जो कुछ है वह इस यौवन मे है।
मैं कहता हूँ एक बात आपको सुनिए जरा ध्यान से—
जो कुछ भी भला बुरा है वह आपके मन मे है ॥

एक कहावत है जिसे प्राय आप कई बार दोहराते हैं—

'मन चंगा तो कठौती में गगा।'

पर जोधपुर वालो ! यह जो प्रसिद्ध कहावत मैंने आपके सामने प्रस्तुत की है। यह नैतिक ही नही, शारीरिक स्वास्थ्य का भी मूल मन्त्र है। चिकित्सक पर भारी जिम्मेदारी है। उसे केवल रोगी के शारीरिक रोग लक्षणो पर ही निर्भर नही रहना चाहिए। मानसिक लक्षणो पर भी उसे पूरा ध्यान देना चाहिए। तभी वह रोगी की स्थिति को पूर्णरूप से समझ पाएगा। तन के स्तर पर जो व्याधिया दिखाई देती हैं उनका उद्गम स्थल

मन के भीतर है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस मे लिखा है—

सुनहु तात अब मानस रोगा।
जिनहि ते दुःख पावहि सब लोगा॥
मोह सकल व्याधि कर मूला।
जिनहि ते पुनि उपजइ बहु शूला॥
काम, वात, कफ, लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीत करई जो तीनो भाई।
उपजई सन्निपात दुखदाई॥

इसी प्रकार तीन सौ वर्ष पूर्व एक कवि हुए हैं जिनका नाम मिल्टन था। मिल्टन ने कहा था—'मन स्वर्ग को नरक बना सकता है और नरक को स्वर्ग बना सकता है।' भगवान महावीर ने आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व कहा भी तो था—साधको! 'बधप्पमोक्खो तुज्झत्थमेव' अर्थात् तुम्हारा बधन और तुम्हारी मुक्ति कही बाहर में नही अपितु तुम्हारे भीतर ही है। बंधन और मोक्ष की कल्पना या धारणा अपने से अन्यत्र करना अज्ञान है। हजारो वर्ष पहले प्राचीन यूनान के चिकित्सक इस बात से परिचित थे कि मन शरीर को रोगी बना सकता है और उसे नष्ट भी कर सकता है।

हमारा तन्दुरुस्त रहना या बीमार पडना हमारे ही हाथो में या यो कहिए हमारे ही मन मे है। स्वस्थ रहने के लिए ही तो भक्तों ने प्रभु से प्रार्थना की है—तन्मे मन शिवसकल्पमस्तु। प्रभो! हमें और कुछ भी नही चाहिए, चाह मात्र एक यही है कि हमारे मन में शिव संकल्प हमेशा-हमेशा बने रहे।

चिकित्साशास्त्र के सम्बन्ध मे एक बार मैं एक ग्रन्थ का अवलोकन कर रहा था। चिकित्सक बताते हैं कि दुखी बच्चा चिन्ता करते-करते अपने शरीर की अवरोध शक्ति कम कर लेता है और आसानी से सर्दी और जुकाम की चपेट मे आ जाता है। कैसर सोसाइटी ने तो खुले आम घोषणा की है कि कैसर का रोगी मानसिक आवेगो के कारण मर भी जाता है।

चिकित्सको की एक प्रमुख सस्था का कहना है कि ४० प्रतिशत रोगो की जड़ मे मानसिक आवेगो का हाथ रहता है। अनेक चिकित्सक तो ऐसे

रोगो का अनुपात ७५ प्रतिशत और ९० प्रतिशत के वीच मानते हैं। बात आपको सुनने में अजीब सी लग सकती है पर सच है। मन हड्डियो की खराबियों से लेकर पक्षाघात तक का कारण बन सकता है। दूषित विचारों के कारण हृदय रोग तक होते पाया गया है। दांतो के दर्द, मधुमेह, गठिया, संग्रहणी जैसे कई दुःसाध्य रोगो के लिए वहुधा अस्वस्थ मन जिम्मेदार होता है।

मन का शरीर के ऊपर कितना प्रभाव पड़ता है। यह आप अपने ही दैनिक अनुभवो से अच्छी तरह जान सकते हैं। परेशानी और लज्जा से चेहरा लाल हो जाता है। भय से त्वचा सफेद पड जाती है। आतंक के कारण पांव ठण्डे पड जाते हैं। मनोवैज्ञानिको का स्पष्ट अभिमत है और यथार्थ भी है कि निरन्तर अस्वस्थता के चिंतन से स्वस्थ व्यक्ति भी अस्वस्थ हो जाता है, तो निरन्तर स्वस्थ चिन्तन से देखते-देखते जबर्दस्त रूप से अस्वस्थता से ग्रस्त रोगी भी रोग से मुक्ति पा लेता है।

अभी यही कुछ दिनो पहले एक भाई ने मुझे कोई एक पत्रिका लाकर दी थी। मैंने उसमे एक लेखक द्वारा लिखित कोई लेख पढ़ते समय, उसमे पढा था कि न्यूयार्क मे एक विख्यात अस्पताल मे पिछले दिनो ऐसे एक हजार रोगियो की जाच की गई जिनके रोगो का सही निदान नहीं हो पाया था। ८१ प्रतिशत रोगी मूलतः भावनात्मक असन्तुलन से पीडित थे और इसी असन्तुलन ने उन्हे शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ बना रखा था। रूस की दो वहुत पुरानी और बहुत सच्ची कहावतें हैं कि "आदमी मे कोई रोग नही होता, हाँ रोगी आदमी अवश्य होता है" और "रोगी अपने रोग से तो पीडित रहता ही है, भय से भी पीडित रहता है।"

मानसिक तनावो तथा आवेगो के कारण पित्ताशय की पथरी बढ जाती है। व्यक्ति टी० वी० का शिकार बन जाता है। धमनियो पर छाई चर्बी फूल जाती है। मानसिक या भावनात्मक आवेग जितना ही वढता है एड्रेनेलीन नामक हारमोन उतनी ही अधिक मात्रा मे रक्त मे प्रवाहित होने लगता है। यह हारमोन छोटी धमनियो को संकुचित करता है। हृदय की धमनियां भी इससे प्रभावित होती है। अगर वे बहुत अधिक सकुचित हो जाती हैं तो मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है।

यदि हम चिन्ता, भय, निराशा तथा क्रोध, मान, माया, लोभ और राग-द्वेष जनित आवेगो को वश में रखना सीख जाए तो हम हर तरह की

व्याधियो से अपने आपको बचा सकेंगे। स्वस्थ तन के लिए स्वस्थ मन का होना आवश्यक है। मन यदि अस्वस्थ है तो तन भी अस्वस्थ रहेगा और अस्वस्थ तन साधना के लिए कभी भी साधक सिद्ध नही हो सकता। शरीर धर्म साधना का साधन है। उसकी कभी भी उपेक्षा नही होनी चाहिए। पर यह दुर्भाग्य का विषय है कि अस्वस्थ रुग्ण मन के कारण हम निरन्तर पिछडते चले जा रहे हैं।

मन को निरन्तर के अभ्यास के द्वारा स्वस्थ बनाने के प्रयास होने चाहिए और यदि मन को स्वस्थ बनाने के प्रयास सम्यक् प्रकार से हो सकें तो कबीर के इन शब्दो में हम निश्चित रूप से अहसास कर सकेंगे—

कबीरा मन निर्मल भया, जैसे गगा नीर।
पाछे पाछे हरि फिरे, कहत कबीर कबीर॥

मन की पवित्रता सबसे बडी पवित्रता है। स्थानांग सूत्र में जो दस प्रकार के मुण्डन बताए गए हैं उनमें केश का मुण्डन सबसे आखिरी मे है। पांच इन्द्रियों एवं चार कषाय के मुन्डन की चर्चा पहले है।

कहा भी जाता है—

केसन कहा बिगारिया, जो मूंडो सौ बार।
मन को क्यों नहि मूंडिए, जामे विषय विकार॥

बाहर में दिखाई देने वाली तकरार का मूल भी मन है और बाहर मे बरसने वाले प्यार का आधार भी मन है। मन को विषमताओं, संकीर्णताओं से मुक्त करके देखो। वह अनुभूति और वह प्राप्ति होगी कि जिसकी आज से पहले सम्भवत. कभी कल्पना भी नही की हो। पर याद रखिए बात स्पष्ट है—

उतना ही आकाश मिलेगा, जितना बड़ा हमारा आंगन।
उतनी सांस मिलेगी केवल, जितना खुला हुआ वातायन॥

श्रोताओ! फिर कभी इस बारे में अवसर हुआ तो आपके बीच चर्चा करूंगा। कुछ बालक बालिकाओ द्वारा आज कोई कार्यक्रम भी तो रखा गया है। आपसे मेरा विशेष सकेत है कि बच्चों के कार्यक्रम को कुछ देर स्थिरता रखकर अवश्य देखें। ऐसा न हो कि इनके मन को चोट लगे।

वैसे आज मैंने बात ही लगभग मन के सम्बन्ध मे ही कही है, जरूर मन की बात को आप अपने मन मे उतारेंगे।

धीरे-धीरे मोड तू इस मन को।
इस मन का तू, इस मन को ॥
मन मोडा फिर डर नही, कोई दूर प्रभु का घर नही · ·

मन लोभी, मन कपटी है मन चोर।
कहते आए मन पल-पल मे और ॥
अभ्यास से, वैराग्य से, कुछ भी है दुष्कर नही ·

जीत लिया मन फिर ईश्वर नही दूर।
जान-बूझ क्यो 'कमल' बना मजबूर ॥
नादान क्यो, बेईमान क्यो, गफलत बन्दे ! कर नही ·

२४ | राह के पत्थर न बनो

महानुभावो !

अभी आपके सामने सद्गुणो को ग्रहण करने की चर्चा की जा रही थी। साधक की दृष्टि होनी भी यही चाहिए कि वह सद्गुणो को स्वीकार करे एव दुर्गुणो को प्रतिकार दे। गुण ग्राहक विना तथ्य यह है कि कोई सम्यक्त्वधारी हो ही नही सकता। चतुर्थ गुणस्थान मे पहुँचा हुआ यद्यपि अव्रती होता है पर वह सम्यक्दृष्टि होता है और सम्यक्दृष्टि के जीवन की यह विशिष्टता होती है कि वह अवर्णवादी एव क्रूर कभी भी नही होता। अवर्णवाद करने वाला दर्शनमोहनीय का वन्ध करता है और यह बन्ध जीवन मे विविध दुःखो के छन्द खड़े कर देता है।

आलोयणा मे एक दोहा है जिसे प्राय आप वोलते ही हैं—

अवगुण उर धरिये नही, जो हो पेड़ ववूल।
गुण लीजे कालू कहे, नही छाया मे शूल॥

राजहस की विशिष्टता से आप परिचित हैं। हजारों-हजारो कंकरो के ढेर मे से वह ककरो को छोडकर मोती को अपनी चोंच से उठा लेता है। हमारी दृष्टि भी राजहस के समान होनी चाहिए। ससार ससार है। उसमे गुण भी हैं तो अवगुण भी हैं। वात हमारी दृष्टि की है, हम क्या ग्रहण करते हैं। कहा भी है—

फूलो के वीच ही शूल होते हैं,
शूलो के बीच ही फूल होते हैं।
देखना यह है हमारी नजरो मे—
शूल होते हैं या फूल होते हैं॥

सृष्टि, सृष्टि है। महत्वपूर्ण हमारी दृष्टि है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि तो जैसी मति वैसी गति या यू कह सकते है कि जैसे हमारे विचार होते हैं वैसा ही ससार होता है। दृष्टि विकृत है तो चारो ओर विकृति ही विकृति है। चोर के लिए सभी चोर हैं तो साहूकार के लिए सभी

साहूकार हैं। पच्चीस बोल में जो अठारहवाँ बोल है उसमें दृष्टि के बारे में चर्चा की गई है। विशुद्ध दृष्टि वाला बुराई में भी भलाई को ढूंढकर उससे अपने आपको सबधित करके सुगमता से जीवन विकास को सपादित कर लेता है। कितनी भावपूर्ण पंक्तियाँ हैं—

लग रहा है विश्व खारा किन्तु अमृत भी यहीं है
फेंक मत खट्टे दही को, क्योकि असली घृत वही है
राजहंसो! छोड मत जाओ, सरोवर के किनारे
कंकरो के बीच मोती जगमगाते भी वहीं हैं
कंटको से छिद गया पर हार माली! मानना मत
कटकों के बीच सुन्दर सुमन सौरभ भी वही है
धूल ढेले झाडियो को, देख मत हैरान होना
ओ कृपक! ये खेत सुन्दर लहलहाते भी वही है
घोर काली रात मे तुम, लक्ष्य से मत भ्रष्ट होना
क्यों कि ज्योतिर्मयी प्रभा से, पूर्ण प्रात भी वहीं है

श्रोताओ! आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से तो सद्गुणो का सर्जन आवश्यक है ही, व्यावहारिक दृष्टि से भी उपादेय है। सद्गुणो के कारण मानव सर्वत्र आदर पाता है और दुर्गुण उसे पतन और अनादर के मार्ग पर ले जाते हैं। प्रश्न उठता है कि मनुष्य कैसे सद्गुणो को पहचाने और उन्हे विकसित करने का प्रयास करे और दुर्गुणो के दुष्प्रभाव से स्वयं को मुक्त करे।

इसके लिए आत्मान्वेषण प्रथम सोपान है। मनुष्य यह जानने का प्रयास करे कि उसमे क्या-क्या कमिया हैं और क्यो हैं? वह कमियो पर विजय पाने का प्रयास करे। साथ ही वह यह भी जानने का यत्न करे कि उसमें कौन कौन सी क्षमताएं विद्यमान हैं और तदुपरान्त उन क्षमताओं को विकसित करने की कोशिश करे। जो व्यक्ति सद्गुणो को त्याग कर दुर्गुणों के पीछे भागता है उसकी स्थिति पशुवत् जीवन जीने वाले उस दुष्ट के समान है जो घर का पवित्र और स्वादिष्ट भोजन त्यागकर शूकर की तरह गली गली मुँह मारता फिरता है।

सद्गुण सम्पन्न व्यक्ति जिस रास्ते से गुजरता है, लोग सिर झुकाकर उसका स्वागत करते है, उसके साथ चलने मे गर्व की अनुभूति होती है उसके साथ बैठने मे मन खिल सा जाता है, जब कि दुर्गुणी सामने से आता हुआ दिखाई दे जाय तो लोग रास्ता बदल लेते हैं। अगर सामने रुकना भी पड़ जाय तो हां हूं मे एक दो सवालो का उत्तर देकर कोई बहाना

बनाकर चल पडते हैं। अगर ऐसा व्यक्ति किसी के घर में चला जाय तो खिले मन से कोई द्वार तक नही खोलता। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है—

जहा सूणी पूई कन्नी, निक्कसिज्जई सव्वसो।
एवं दुस्सीले पडिणीए, मुहरो निक्कसिज्जई॥

जिस प्रकार सड़े हुए कानो वाली कुतिया जहां भी जाती है, दुत्कार कर निकाल दी जाती है। उसी प्रकार दुःशील, उद्‌दण्ड और मुखर-वाकाल मनुष्य भी सर्वत्र धक्के देकर निकाल दिया जाता है।

सदाचारी का मन सदैव शांत और प्रफुल्लित रहता है वह एक पल के लिए भी दुश्चिन्ताओ से नही घिरता। दुनिया के लिए जिन परिस्थितियों मे जीना असम्भव होता है उन्ही परिस्थितियों का वह मुस्कराते हुए सामना करता है। जबकि दुर्गुणों से ग्रस्त दुष्ट प्रकृति का भूत जिसके सिर पर सवार हो, वह हर पल दुश्चिताओ एव पीडाओं से ग्रस्त रहता है। वस्तुतः भय का राक्षस दुर्गुणो के दल-दल से ही जन्म लेता है। पापी दुनिया और कानून की नजर से भले ही बच जाय लेकिन वह अपनी नजर मे तो गिरा ही रहता है। हीनता का यह तिलचट्टा हर पल उस पर रेंगता रहता है।

सद्‌गुणो के प्रति समर्पित सदाचारी का जीवन आडंबर शून्य रहता है, वह हर पल वही दिखाई देता है जो अन्तर से होता है। जबकि दुष्ट हर पल चेहरे पर एक मुखौटा पहने रहता है। बनावटीपन उसके जीने का ढंग बन जाता है। वह अपने उजले कपड़ो मे असलियत को छिपा लेता है। दुनियाँ भले ही उसकी जय जयकार करे लेकिन वह जब दर्पण के सामने खडा होता है तो उसे स्वयं से ग्लानि होने लगती है।

कहने का अभिप्राय एक मात्र यही है कि जीवन मे अधिकाधिक जागरूक रहकर सद्‌गुणों को आत्मसात करने का हम प्रयास करे। सद्‌गुणो की आराधना के लिए यह आवश्यक है कि अवगुणो मे डूबे हुए दुराचारी व्यक्तियो के सम्पर्क साथ से हम अपने आपको दूर रखें। दुष्ट व्यक्ति के साथ रहने से अच्छे व्यक्ति की अच्छाइया भी प्रभावित होती हैं। दुर्जन दुर्मतिजनो की संगति करने से सज्जन का महत्व भी गिर जाता है जैसे कि मूल्यवान माला भी मुर्दे पर डाल देने से निकम्मी हो जाती है।

अततः फिर कहना चाहूँगा कि सद्‌गुणो के ग्राहक बनो, सदाचारी बनो, नही तो रास्ते के पत्थर बनकर ठुकराए जाओगे।

✱